226.1
खण्डे/एस/नि

निरुत्तरतन्त्रम्

अनुवादक
एस० एन० खण्डेलवाल

भारतीय विद्या प्रकाशन
वाराणसी-दिल्ली

निरुत्तरतन्त्रम्

(मूल संस्कृत तथा भाषानुवाद)

अनुवादक

एस. एन. खण्डेलवाल

भारतीय विद्या प्रकाशन

दिल्ली वाराणसी

© भारतीय विद्या प्रकाशन

(१) पो० बा० नं० ११०८ कचौड़ी गली, वाराणसी—२२१००१

(२) १; यू० बी० जवाहरनगर बैंग्लो रोड, दिल्ली—११०००७

मूल्य B V P Rs 50.00

प्रथम संस्करण १९९६

226.1
खण्डे/एस/नि

मुद्रक

न्यू दीपक प्रेस

राजघाट वाराणसी—२२१००१

द्वारा—

भारतीय विद्या प्रकाशन

कचौड़ी गली वाराणसी फोन ३२२३७६

भूमिका

वाराहीतंन्त्र के अनुसार तंत्रशास्त्र में सृष्टि, प्रलय, देवपूजन बिधि, साधन विधि, पुरश्चरण, षट्कर्मसाधन तथा चतुर्विध ध्यानयोग का वर्णन रहता है। पक्षान्तर से अतिविकसित तन्त्रों में सर्ग, प्रतिसर्ग, यन्त्रनिर्णय, देवता का संस्थान, तीर्थवर्णन, आश्रमधर्म, विप्रसंस्थान, भूतसंस्थान, देवोत्पत्ति, कल्पतंत्र ज्योतिः संस्थान, पुराण आख्यान, कोषवर्णन, व्रत, शौचाचार निर्णय, नरकवर्णन, हरचक्रवर्णन, स्त्री-पुरुष लक्षण, राजधर्म, दानधर्म, युगधर्म, व्यवहार, तथा अध्यात्म का तत्व अंकित रहता है। प्रस्तुत 'निरुत्तरतंत्र' में जो विषय आलोचित है, वह इतनी विस्तृत परिभाषा के अन्तर्गत प्रतीत नहीं होता। इसलिए प्रतीत होता है कि यह एक प्रकार का उपतन्त्र है। इस तन्त्र में पशुभाव, वीरभाव तथा दिव्यभाव की तांत्रिक साधना का अंकन है। पशुभाव तथा दिव्यभाव का मात्र संकेत दिया गया है, जबकि वीरभाव के साधन का विस्तृत विवरण प्रस्तुत हुआ है।

इस तंत्रग्रंथ में अनेक ऐसे तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं, जिनका उल्लेख अन्यत्र नहीं मिलता। जैसे प्रथम पटल में दो प्रकार के श्मशान का उल्लेख है। प्रथम है योनि! चिता ही योनि है। यह प्रथम श्मशान है। द्वितीय प्रकार का श्मशान शिवलिंग को माना गया है। पशु, वीर तथा दिव्यभाव का वर्णन करते हुये पशुभाव का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत कर दिया गया है। तदनुसार दक्षिणाचार के अन्तर्गत आने वाले समस्त तंत्रोक्त साधन पशुभाव के ही साधन हैं। पश्चिमाम्नाय के तंत्रोक्त साधन समूह मिश्रित कहे गये हैं, अर्थात् उनमें वर्णित उत्तम कर्मों को पशुभाव तथा वीरभाव का मिश्रित कर्म कहा गया है। उत्तराम्नाय के तंत्र ही दिव्यभावयुक्त हैं, परन्तु इसमे दिव्यभाव वाले साधक को भी श्मशानस्थ होकर वीरभाव का साधन करना पड़ता है। केवल उर्ध्वाम्नाय वाले तंत्रोक्त

साधन ही पूर्णतः शुद्ध दिव्यभाव का द्योतन कराते हैं, उनमें वीरभाव का मिश्रण नहीं होता। इसी प्रकार इस पटल में यह निरुपित किया गया है कि जब शिव स्वयं शक्ति की ओर उन्मुख होते हैं, तब वे शक्ति बन जाते हैं ! परन्तु जब शक्ति शिव की ओर उन्मुख होती है, तब वह शिव बन जाती है। तात्पर्य यह है कि जब शिव शक्ति की ओर उन्मुख होते हैं, तब सृष्टि कर्म का और जब शक्ति शिव की ओर उन्मुखी होती है, तब संहार क्रम का द्योतन होता है। तंत्र में सृष्टिक्रम का प्रयोग लौकिक सिद्धि के लिये और संहारक्रम का प्रयोग निर्वाण तथा मुक्ति के लिये किया जाता है।

इस ग्रंथ के चतुर्थ पटल में वीरभाव एवं दिव्यभाव के साधक के लिये मानसपूजा का विधान किया गया है और बाह्यपूजा को निकृष्ट संज्ञा प्रदान की गई है। इस पटल में योग तथा नाड़ी समूह का वर्णन प्राप्त होता है। इस पटल में यह तथ्य अंकित है कि आसन की संख्या उतनी है जितने जीव-जन्तु सृष्टि में उपलब्ध हैं, अर्थात् चौरासी लाख आसन होते हैं। इनमें से दो प्रकार का आसन उत्तम है पद्मासन एवं सिद्धासन। इस अध्याय से यह ज्ञात होता है कि तांत्रिक साधना की पूर्णता के लिये राजयोग आवश्यक है। तांत्रिक सिद्धि के लिये अजपा जप एवं प्राणायाम की भी आवश्यकता होती है। मन के समाहित होने पर जप फलप्रद हो जाता है और ज्योति ही कालिका का रूप धारण कर लेती है। समाहित मन ही मानसपूजन का अधिकारी हो जाता है।

वामाचार-वीराचार प्रधान तन्त्रों में अनेक ऐसे तत्व तथा साधन का समावेश रहता है जिन्हें नैतिक दृष्टि से अथवा सामाजिक परिवेश में उचित नहीं कहा जा सकता जैसे पंचमकार आदि। इस सन्दर्भ में इस भ्रान्ति को दूर करने का महत्वपूर्ण कार्य निरुतर तन्त्र में हुआ है। निरुत्तर तन्त्र के अनुसार इस दिशा में जो कुछ वर्णित है, वह सब संकेत मात्र है। जैसे मद्य का तात्पर्यार्थ कुछ और ही है। मांस एवं मैथुनादि का प्रचलित अर्थ तन्त्रों में कदापि व्यवहृत नहीं होता। इस तन्त्र के अनुसार वे सब मात्र सांकेतिक शब्द हैं।

इन्हें जान लेना साधक का एक आवश्यक कर्त्तव्य है। जो इन संकेतों का निहितार्थ नहीं जानता उसे दुःख की प्राप्ति होती है।

इस तांत्रिक मार्ग में साधक तथा देवी का अभिन्नत्व सिद्ध किया गया है। इसमें कहा गया है कि यदि साधक भूखा, प्यासा, अभाव ग्रस्त होकर दुखी है तब उसकी आराध्या भी उसके दुःख से सन्तप्त हो जाती हैं। अतः आहारादि से परितृप्त होकर साधनरत होना चाहिये। यह भी एक संकेत है। इसका अर्थ यह नहीं है कि पेटभर भोजन करके, जल से उदर को पूर्ण करके साधनरत होना चाहिये। ऐसा करने पर तन्द्रा तथा आलस्य अवश्यम्भावी है। इस संकेत का अन्य अर्थ है। मन्त्रजपरूपी अन्न से अपने जन्म-जन्मान्तर की क्षुधा को निवृत्त करके, अपनी जन्म-जन्मान्तर की पिपासा का शमन सहस्त्रार की कर्णिका से स्त्रवित सुधा का पान करके तथा समस्त अभावों को भावमग्नता द्वारा भगाकर, तब साधना में अर्थात् सामस्यात्मक एकत्वानुभूति में लीन होना चाहिये। अतः इस मार्ग में संकेतज्ञान न होने पर अर्थ का अनर्थ हो जाता है। संकेत अनेक प्रकार के होते हैं :—

क्रमसङ्केतकञ्चैव पूजासङ्केतमेव च।
मन्त्रसङ्केतकञ्चैव यन्त्रसङ्केतकं तथा॥

अर्थात् क्रम संकेत (साधना क्रम के संकेत) पूजा संकेत, मन्त्र संकेत एवं यन्त्र संकेत ही चार रूप हैं। इनके ज्ञान के अभाव में समस्त तन्त्र कर्म निष्फल हो जाते हैं। उदाहरण स्वरूप एक स्थान पर कहा गया है कि परब्रह्मविद्यारूपिणी रजनी देवी के मन्त्र का जप दिन में नहीं करना चाहिये। इस संकेत का अर्थ है कि इनका जप रात्रि में करना उचित है। यहाँ रात्रि का तात्पर्य है जब इनका नाड़ी अर्थात् बायी-नासिका से श्वास भीतर जा रहा हो। दिन का तात्पर्य है जब पिंगला नाड़ी अर्थात् दाहिनी नासिका से प्राणवायु भीतर जा रही हो।

इसी प्रकार पंचमकार के अन्तर्गत् आलिंगन. चुम्बन, आघात, रतिविग्रह देखना, आमन्त्रण, भगलिंग की बातें करना तथा विपरीत रति को साधनांग माना गया है। यदि साधन में इनके प्रचलित अर्थ का वरण करते हैं, तब निश्चित रूप से महा अनर्थ की संभावना है। अतः तन्त्र की यह चेतावनी यथार्थ है कि गुरु के बिना तन्त्रमार्ग में प्रवेश नहीं करना चाहिये। संकेतज्ञ गुरु ही इनका वास्तविक संकेतार्थ प्रकट कर सकते हैं। जैसे आलिंगन = अंगन्यास करन्यास, चुम्बन = ध्यान, आघात = प्राणायाम, रतिविग्रह दर्शन = जप, आमन्त्रण = देवता का आवाहन, भगलिंग की ही बाते करना = शिव एवं काली के नाम का सतत उच्चारण, विपरीत रति = कुण्डलिनी का परमशिव से संयोग अथवा प्रवृत्तिमार्ग से निवृत्ति की ओर जाना।

इस विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि वामाचार एवं वीराचार के सम्बन्ध में अनेक प्रचलित धारणायें भ्रान्त हैं तथा अज्ञान की देन हैं। संकेतज्ञ ही इनकी यथार्थ विवेचना कर सकता है। वास्तव में वामाचार तथा वीराचार का जो यथार्थ स्वरूप है. उसमें महान् चारित्रिक, मानसिक तथा नैतिक स्थिति का साधक ही सफल प्रयत्न हो सकता है। संकेतज्ञान से रहित को ही इस मार्ग में अश्लीलता तथा अनैतिकता का मिथ्या आभास होता है, जो तांत्रिक मार्ग का दोष न होकर व्यक्ति का अल्पज्ञान जनित दृष्टिदोष है।

यहाँ यह लिखना आवश्यक प्रतीत होता है कि कोई भी तन्त्र वाह्यतः अपने आप में पूर्ण नहीं है। तन्त्रशास्त्र के समस्त ग्रंथ कहीं-न-कहीं एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। एक के अनुशीलन से उठी समस्या का समाधान दूसरे में है। एक में जो गुत्थी उलझाती प्रतीत होती है, वही दूसरे तन्त्र के माध्यम से सुलझ सी जाती है। इसका कारण यह है कि समस्त ज्ञात एवं अज्ञात तन्त्र एक ही महातन्त्र की स्फुलिंग, प्रकाश रेखा अथवा चिनगारी के समान हैं। उस महातन्त्र के प्रत्येक बिन्दु से अनन्तानन्त तन्त्रों का निर्गमन इस महासृष्टि में अनादि काल से होता रहता है। यही कारण है कि पूर्ण जाग्रत तथा प्रबुद्ध

गुरु का आश्रय तांत्रिक साधना में आवश्यक माना गया है। पूर्ण जाग्रत गुरु में महातन्त्र का यह स्त्रोत पश्यन्तिवाक् के रूप में अपने आप उमड़ता रहता है। गुरु के अभाव में केवल ग्रंथ पढ़कर साधनरत होना महाजनों की दृष्टि में कदापि उचित नहीं है।

वसन्त पञ्चमी, १९९६ ई०
बी ३१|३२ लंका, वाराणसी

एस. एन. खण्डेलवाल

विषयनुक्रमणिका

प्रथमः पटलः	...	१
द्वितीयः पटलः	...	१०
तृतीयः पटलः	...	२५
चतुर्थः पटलः	...	३०
पञ्चमः पटलः	...	४३
षष्ठः पटलः	...	५५
सप्तमः पटलः	...	६२
अष्टमः पटलः	...	६९
नवमः पटलः	...	८०
दशमः पटलः	...	८६
एकादशः पटलः	...	९७
द्वादशः पटलः	...	१०८
त्रयोदशः पटलः	...	११५
चतुर्दशः पटलः	...	१२१
पञ्चदशः पटलः	...	१४०

—●—

प्रथमः पटलः

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
१. आसामाराधना केन	१
२. उभयोरुभयोः	३
३. कलापूजां कृता	
४. कलापूजां विधायाथ	६
५. कलापूजां विना	७
६. कलापूजां विना	७
७. कलापूजां	८
८. कलाया द्विविधा	८
९. कालीकुलं	२
१०. कालीतारा	२
११. कुलनाथं विना	३
१२. कुलशास्त्ररता	३
१३. गोपनात्	५
१४. गोपनं सिद्धिमूलञ्च	९
१५. तस्मात्	८
१६. दिव्यगुरोर्मुखांल्लब्ध्वा	४
१७. दिव्यभावैश्च	२
१८. दिव्ये वीरे च	४
१९. दिव्योऽपि वीरभावेन	५
२०. दिव्यो वीरो	८
२१. देवतागुरुमंत्राणां	५
२२. द्रव्याभावे द्विजो	९
२३. द्विजातीनाञ्च	९
२४. द्वयोर्योगं विना	७
२५. धूमावती च मातङ्गी	२
२६. न चार्चयेत्	७

श्लोकाः	पृष्ठांङ्काः
२७. न दिवा	६
२८. पशुगुरोर्मुखांल्लब्धवा	४
२९. पश्चिमाम्नायजं	४
३०. पूर्वाम्नायोदितं	४
३१. भावभेदेन कथय	१
३२. रात्रौ कुलक्रिया	५
३३. लतानीलं विना	३
३४. लतयां पूजयेत्	३
३५. श्मशानगामिनो	५
३६. श्मशानं दक्षिणास्थानं	६
३७. श्मशानं द्विविधं	६
३८. सर्वासां सिद्धविद्यानां	२
३९. सिद्धविद्या पुरा	१

द्वितीयः पटलः

१. अथ वक्ष्ये	१४
२. अपि चेत्	१५
३. अमा स्यान्निर्गुणे	१२
४. अन्ते वह्निवधूं	१५
५. अभयं वरदं	१७
६. अर्घ्यपात्रादिकं	२०
७. अष्टाभिः	२१
८. आराध्यं मनसा	१९
९. इन्द्रादिदशदिक्पालान्	२३
१०. उच्चैर्नोच्चरयेन्मन्त्रं	१९
११. उन्मत्तश्च कपाली	२२
१२. एकाक्षरी	१५

१३. एवं ध्यात्वा	१९
१४. कालीकुलप्रवृत्तानां	२४
१५. कुल्लूकां	२३
१६. केवलं	२१
१७. गुरुपङ्क्ति ततो	२१
१८. चतुद्वारे यजेद्देवि	२२
१९. चिन्तयेत् परया	२०
२० ज्योतिश्च दक्षिणा	११
२१. तयोर्योगमयं	१३
२२. तत आज्ञां	२१
२३. तारायाः	२४
२४. त्रिगुणा	१५
२५. त्रिनेत्रं	२२
२६. त्रिपश्चारे महापीठे	१७
२७. दलाष्टे	२२
२८. देवदेव	१०
२९. नारीरूपं समास्थाय	१२
३०. निर्गुणा	११
३१. निर्गुणश्च	२२
३२. न्यासजालं पुरा	१७
३३. पीठेनैव समस्तेन	२१
३४. पुनः	२४
३५. पुनः	२०
३६. पूजयेद्दक्षिणे	२३
३७. पूजा वा	१०
३८. ब्रह्मविष्णुमहेशानां	१४
३९. ब्रह्मा रुद्रश्च	१६
४०. ब्रह्मासनयुतं	१४
४१. भैरवोऽस्य	१७
४२. भोगेन लभते	१४
४३. मदिराघूर्णनयनां	१८
४४. मन्त्रमुच्चार्य	२०
४५. महत्वादीनी	१०
४६. महामेघप्रभां	१७
४७. मानसं पूजनं	१९
४८. योनिमध्ये	११
४९. योनिश्च	११
५०. शक्तिज्ञानं	१३
५१ शवरूपमहादेवहृदयोपरि	१८
५२. शवानां	१७
५३. शिवशक्तिमयां	१३
५४. शिवोऽपि	१३
५५. शुक्रतो जायते	११
५६. संकेतमार्गाद्देवेशि	१६
५७. सहवानेव	१२
५८. संकेतमार्गाद्देवेशि	१६
५९. सविन्दुमातृकायुक्ता	२४
६०. साधनं	१०
६१. सिद्धविद्यासु	१३
६२. सेतुं तु	२३
६३. स्नानं	२०
६४. स्वर्गे मर्त्ये	१६

५. सृक्कद्वयगलद्रक्तधारा	१७
६. ह्ली बीजं	१७

तृतीयः पटलः

१. इत्येतं कालिकास्तोत्रं	२९
२. उग्रा कर्णौ	२६
३. कामबीजत्रयं	२७
४. कालिकाकवचं	२७
५. कुल्ला गण्डौ	२५
६. कूर्चबीजयुगं	२७
७. धर्मं पातु	२६
८. नवयौवन सम्पन्ने	२८
९. नीलोत्पलजटाभारे	२९
०. प्रत्यालीढपदे	२८
१. प्रलयानलधूम्राभे	२९
२. ब्रह्मशम्भुजलौघे	२९
३. भगवन् सर्वदेवेश	२५
४. भवनं मत्तहासा	२६
५. महाकालप्रिया	२६
६. रतिप्रिया लिङ्गमूलं	२६
७. लज्जिह्वे	२८
८. बक्षः स्थलं	२६
९. वह्निजाया	२७
०. व्याघ्रचर्माम्बरधरे	२९
१ शंकरो	२८
२. शक्तिवीजद्वयं	२७
३. सिंहकाली शिरः	२५
२४. हुं हुं कारे	२८

चतुर्थः पटलः

१. अजपानाम	३४
२. अद्य प्रकृति	४०
३. अपानः कर्षति	३३
४. आनीय कान्तां	३९
५. आपादं	३६
६. आसनं	३१
७. आसनानि	३१
८. आसनानि च	३०
९. आसनेभ्यः	३१
१०. इदं तत्त्वं	३७
११. इयश्च मानसी	३७
१२. इयश्च त्रिगुणा	३२
१३. उत्तमा मानसी	३०
१४. एताश्च प्राणवाहिन्यः	३२
१५. एते नाडीसमस्तेषु	३३
१६. एवं नाडीमयं	३२
१७. करणं	३६
१८. कालीकूर्चं	३८
१९. कुलद्रव्यैस्तद्दशांश	४१
२०. गान्धारी हस्ति जिह्वा	३२
२१. चरतां	३६
२२. चन्द्रबीजं	३५
२३. तच्चिन्तनं	३६
२४. ततः	४०

२५. तत्वाचिन्तापरो	४१
२६. तत्सुतं	४२
२७. तदभावे	४१
२८. तद्दशांशं	४१
२९. तद्दशांशाभिषेकञ्च	३८
३०. तमोगुणा	३२
३१. तस्मात्	३७
३२. तत्र काम कलां	३९
३३. तत्र चावाहनं	४०
३४. तत्र देवी	४०
३५. त्रिपुरा बगला	३८
३६. दिवालक्षं	३८
३७. द्वाविंशत्यक्षरी	३८
३८. धारणा द्वादश प्रोक्ता	३५
३९. नागः	३३
४०. नाडीनां	३१
४१. निगुर्णादिक भावेन	३६
४२. पाशवं कथितं	३९
४३. पुरश्चरणकाले	४१
४४. पुरश्चरणकाले	४२
४५. पूजा च कथिता	३०
४६. पेयं जलनिधेर्मानं	३७
४७. प्रधानं	३१
४८. प्राणायाम् द्विषट्केन	३५
४९. फलं पुष्पं	३७
५० मातङ्गी	३८

५१. यत्समाधेः	
५२. यथा सिंहे	
५३. वायवश्चैव	
५४. व्यक्ता च	
५५. षट्शतानि	
५६. सम्प्रदायबिदे	
५७. सर्वाम्नायोदितं	
५८. हंसगतिः	
५९. होमेन सर्वसिद्धि	
६०. हृदि प्राणो	

पंचम पटलः

१. अजपा रजनी	
२. अग्रे चक्रं	
३. अभेद प्रकृति	
४. अक्षोरन्तर्गतं	
५. एकासनस्थो	
६. एकासने	
७. एवं	
८. कालानाथं	
९. कालीं तारा	
१०. कीदृशं	
११. कुलनाथं	
१२. गुरुं विना	
१३. जपं वा कीदृशं	
१४. दिव्य भावं	
१५. दूतीयागं	

१६. द्रव्याभावे	५२
१७. धनाद्रा कामतो	४६
१८. धूर्तं शठं	५१
१९. न कृते च	५३
२०. नार्चयेत्	५०
२१. निजशक्ति	५४
२२. निर्लोभा	४३
२३. पशुभिदर्शितं	५१
२४. पाने भ्रान्तिर्भवेद्	५१
२५. पृथक्पात्रे	५३
२६. प्रकृतेस्तत्त्वविद्देवि	४७
२७. प्रकृत्याथ	४७
२८. ब्राह्मणो वीरभावेन	५०
२९. ब्राह्मणो	५२
३०. ब्राह्मणः	५१
३१. ब्राह्मणैः	५[illegible]
३२. मनसा साधको	४४
३३. महासिद्धिश्वरो	५४
३४. रात्रौ	५०
३५, लतादर्शनमात्रेण	४९
३६. लतासवं	४९
३७. विंशत्या महती	४६
३८. विना पीत्वा	४८
३९. विना शक्ति	५४
४०. शक्त्यभावे	५५
४१. शक्त्युच्छिष्टं	५३
४२. शठञ्च	४६

४३. शून्यागारे	४९
४४. श्मशानं भैरवीञ्चैव	५२
४५. संकेतजः	४६
४६. संकेतस्य	४७
४७. साधके	४८
४८. स्वीकारे	४९

षष्ठः पटलः

१. अज्ञानतिमिराच्छन्ना	५६
२. अयुतमथवा	५८
३. अरुणमरुणतल्पं	६१
४. आवयोर्मनसा	५९
५. इति कथितं	६०
६. उत्तरादेवफलं	५८
७. एवमाकर्ण्य	६१
८. कथयामि	५९
९. किं दातासि	५८
१०. चपलासि	५६
११. चपलाहं	५६
१२. न कार्यः	५८
१३. निशीथे तु	५७
१४. प्रेयसी तव	६०
१५. भाजनं सर्वविद्यानाम्	५९
१६. भीत्या	५७
१७. मनोरूपा हि	६०
१८, यः करोति	६०
१९. रजनीपूजनादेव	५५

२०. वर्त्तमाने ६०
२१. विन्दुमात्रेण ५७
२२. विश्रान्ते ५९
२३. विस्तीर्णमासनं ५७
२४. वीक्ष्यमाणा ५७
२५. शृणु देवि ५५
२६. संसारभेदकं ५७
२७. सर्वं ५६
२८. सर्वज्ञ जगतां ५६
२९. स्त्रीपुंसो: ५९

सप्तमः पटलः

१. अभिषेकं विना ६७
२. अभिषेकं विना ६७
३. अभिषेकं विधायाथ ६८
४. अभिषेककृतो मंत्री ६५
५. अभिषेककृतो ६४
६. अभिचारहारं ६३
७. अभिषेकश्च ६२
८. असौभाग्यं ६४
९. आगमः ६५
१०. कामाख्यायाः ६६
११. कुलनाथं ६२
१२. गुरूत्वञ्च ६४
१३. ज्ञानिनामभिषेकन्तु ६२
१४. ततः सङ्कल्प ६८
१५. तत्र सिद्धि ६६
१६. तस्मात् सर्वं
१७. तेजोवृद्धिकरं
१८. तेजोह्रासे
१९. दिव्यो
२०. धनदं
२१. पितृभूमिकृतं
२२. प्रगृह्य
२३. प्रणम्य
२४. ब्रह्मत्वञ्च
२५. ब्राह्मणस्य
२६. भगवन्
२७. मन्त्रतन्त्रश्च
२८. महात्रिपान्तरे
२९. विमुखः
३०. वैश्यः
३१. वृद्धिश्राद्ध
३२. सवर्णत्वं
३३. सर्वाशापूरकं
३४. सिद्धविद्या
३५. सुरां पीत्वा

अष्टमः पटलः

१. अजिता मानवी
२. अनेनैव
३. अभिषेकं ततो देवि
४. अलक्ष्मी
५. अंश्वारुढ़ा

६. असिताङ्गो ७६
७. आत्मातश्चात्मनश्चैव ७७
८. इन्द्रो ७५
९. ईशानेन्दुस्मरणक्षौणी ७१
१०. उग्रचण्डा ७४
११. उग्रदंष्ट्रा ७४
१२. ॐ गङ्गाद्याः ६९
१३. ॐ राजराजेश्वरी ७२
१४. एतानि कुलकर्मणि ८०
१५. एवमासिञ्चय ७८
१६. कमला विमला ७५
१७. कुर्याद् ७२
१८. कुलाचारश्च ७९
१९. गाणपत्यश्च ७७
२०. गोभूमिः ७९
२१. चर्टिका ७५
२२. चालयेत् ७१
२३. चिन्तारत्नं ७७
२४. छिन्नामस्ता ७३
२५. क्षेमङ्करी ७४
२६. डाकिनीपुत्रिका ७६
२७. तत्पश्चात् ७१
२८. तथा भगन्दरी ७३
२९. तेजोह्रासो ७८
३०. त्रिपुरानन्दिनी ७३
३१. त्रिपूटा ७३
३२. दीप्ता ७४
३३. नक्षत्रं करुणं ७६
३४. नश्यन्तु ७७
३५ नश्यन्तु ७८
३६. निरामिषा ७८
३७. पुरुषः ७७
३८. प्रणम्य ७९
३९. ब्रह्मा विष्णुश्च ७५
४०. मंगला ७४
४१. मातृणाञ्च ७६
४२. महापूजां ७०
४३. यशोधनाय ७२
४४. रविः ७५
४५. रोगाः ७८
४६. वह्निश्च ७७
४७. वारवेला ७६
४८. विजया मंगला ७४
४९. विशेषाहर्यस्य ६९
५०. वेदादिबीजं ७७
५१. वैष्णवीं च ७५
५२. शक्त्याधारे ६९
५३. शिवशक्तिश्च ६९
५४. संवत्सराश्चायेन ७५
५५. सर्वकार्येषु ७२
५६. सर्वतीर्थफलावाप्तेः ७२
५७. सर्वतीर्थाम्बुपूर्णेन ७१
५८. सिञ्चेद ७१

५९. सिन्दूर ७०
६०. सिद्धमंत्री ८०
६१. श्री बीजेन ७०
६२. श्री विद्यां ७९
६३. श्री विद्यां ७९
६४. हरिताख्या ७३
६५. हुं फट ७०
६६. ह्रदाः ६९

नवमः पटलः

१. अद्य ८१
२. आकर्षणं विना ८३
३. आकर्षणा ८३
४. आनीय ८०
५. कुलाकुलजपं ८२
६. तच्चक्रं ८४
७. ततस्तच्छक्तिकर्णे ८१
८. तत्र कामलतां ८१
९. तत्र देवीं ८१
१०. तावत् ८२
११. त्वत्पदाम्भोरुहच्छायां ८१
१२. देवकन्याकर्षणेन ८२
१३. देवदेव ८०
१४. न गच्छेद् ८५
१५. निर्वाणं श्रेयसं ८४
१६. निर्वाणं श्रेयसं ८३
१७. प्रकृतिर्या ८४
१८. प्रकृत्या ८३
१९. ब्रह्माणि न न वा ८५
२०. ब्रह्मा विष्णुश्च ८३
२१. ललाटे ८२
२२. वामभागे ८२
२३. विकृतेः ८५
२४. विना संलिख्य ८५
२५. शिवोक्तविधिना ८१
२६. सङ्गहीनैः सदा ८४
२७. सिद्धमन्त्री ८२
२८. सिद्धिमूलं ८५

दशमः पटलः

१. अभिषिक्तो ९२
२. अष्टम्याश्च ९१
३. आद्यश्च ९०
४. एकासने न ९४
५. एतद्द्रव्यगणं ९६
६. एवं क्रमं विना ९३
७. एवं क्रमेण ९४
८. करवीरोद्भवं ९०
९. क्रमसङ्केतकञ्चैव ९२
१०. गुरोः समीपे ९२
११. गौडिकं ९१
१२. गौडी वाप्यथवा ८८
१३. घातयेत् ९५
१४. देवचक्रं ९०

१५. देवीं गुरुं ९५
१६. द्रव्यदाने तु ८९
१७. नाभिषिक्तो ९३
१८. पंचचक्रे ८७
१९. पंचचक्रे ८७
२०. पण्डितं ९५
२१. पुरश्चर्याविहीनाश्चेन्न ८६
२२. प्रणम्य ८९
२३. बलीयसी च ८७
२४. बीरचक्रे ९६
२५. भक्ष्यं नानाविधं ८८
२६. भूमीन्द्रकन्यका ९२
२७. मंत्र मुद्रामक्षमालां ९५
२८. मधुमत्ताः ८९
२९. महाव्याधिर्भवेद्देविः ८९
३०. माता भगिनी ८९
३१. मातृयोनिं ९५
३२. मात्रादयः ९१
३३. मात्रादयः ९२
३४. मुद्रा गोधूमजा ८८
३५. योगिभिः ८७
३६. रक्तचन्दनं ८८
३७. राजचक्रं महाचक्रं ८७
३८. लिखितं ९३
३९. लोभाद्वा कामतो ९१
४०. विमाता दुहिता ९६
४१. वीर शक्ति ८६
४२. वीरशक्तिविशेषेण ८६
४३. वीराय ९५
४४. शक्तिर्नानाविधा ८६
४५. शुक्लपक्षे ९०
४६. षष्टिवर्षसहस्राणि ८९
४७. षष्टिवर्ष सहस्राणि ९०
४८. षष्टिवर्षसहस्राणि ९१
४९. संकेतहीनो ९३
५०. संशोध्य ९४
५१. सर्वजात्युद्भवा ८६
५२. सर्वमद्यं ९४
५३. सिन्दूरागुरुकस्तूरीं ९६
५४. सुगन्धि ९१
५५. स्वशक्ति ९४

एकादशः पटलः

१. अंगावरणपूजादौ १०५
२. अज्ञात्वा १०१
३. अथवा शक्तिभाले १०४
४. अभिषेकेन ९७
५. अष्टोत्तरशतं १०२
६ आकर्षिताय १०५
७. आत्मनो ९७
८. आसां भाले १०४
९ आसामभावे १०५
१०. कामाख्या १०५

११. कुलजाष्टसुतां	१०४
१२. कुलाचाररतो	९८
१३. कुलीनां	१०७
१४. कुलीनां	१०७
१५. गवां कोटि	१०६
१६. गृह पद्वय	१००
१७. ग्रामे पातालके	९९
१८. चतुर्वर्णोद्भवा	१००
१९. जपं समर्प्यं	१०२
२०. जपपूजादिकं	९९
२१. ततस्तु	१०३
२२. तत्र पूजां	१०३
२३. तिस्त्र:	१०७
२४. त्रिपान्तरे श्मशाने	१००
२५. दिव्योऽपि	९९
२६. दृष्ट्वा	१०२
२७. नानाजात्युद्भवा	१०४
२८. नानाजात्युद्भावनाश्च	१०१
२९. निर्द्वन्दो	९८
३०. निरालम्बश्च	९७
३१. निर्लोभा कामनापीता	१००
३२. परनिन्दा सहिष्णु:	९८
३३. पूजयन्ति सदा	१०७
३४. पृथिवीं	१०६
३५. प्रणम्य मनसा	१०१
३६. प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य	१००

३७. प्रथमां द्वितीयामुक्तां	१०६
३८. ब्राह्मणीं क्षत्रियां	१०५
३९. भैरवं भैरवी	१०६
४०. महाबलो	९८
४१. यदि द्रव्याणि	१०२
४२. यन्त्रपूजाकृतो	१०७
४३. या मां	१००
४४. योगिनां	९७
४५. रक्तचन्दनलिप्ताङ्गो	९८
४६. वह्निजाया	१००
४७. वज्रपुष्पेण	१०४
४८. वर्णसङ्करतो	१०१
४९. वाक्याद्वा	१०३
५०. विजयरससंयुक्ता	१०३
५१. शक्तिमात्र	९७
५२. शक्तिमात्रं	१०१
५३. शांकरी	१०३
५४. श्मशानागमनिष्ठश्च	९८
५५. स एव	१०२
५६. सर्वदानन्दहृदय:	९९
५७. साधक:	१००
५८. सिद्धविद्या	९९
५९. हीनजां	१०५
६०. हीनजा	१०३
६१. हीनजा	१०४
६२. हीनजा	१०६

द्वादश: पटल:

१. अज्ञात्वा कुलसङ्केत	११२
२. अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि	१०८
३. अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि	१०९
४. अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि	१०८
५. अभिषेकश्च	११३
६. आजन्म च	११३
७. उभयो: सम्मतिं	१११
८. एवं दशशतं	१०९
९. कदलीतरुमूलश्च	१०९
१०. कलापि साधकं	१११
११. कलाया: सम्मति	१११
१२. कामेन पुटित	१०८
१३, कुलद्रव्याणि	११४
१४. कुलपूजादिकं	११४
१५. कुलागारे	१०९
१६. क्रोधाद्वा कामतो	११२
१७. गुरुं विलङ्घ्य	११२
१८. जपपूजां तथा	११३
१९. ततस्तु तत्वंयोगेन	१०९
२०. तत्वचित्तापरो	१०८
२१. तद्धृते	११०
२२. तस्मात् सर्वप्रयत्नेन	११३
२३. तस्मात् सर्वप्रयत्नेन्	११५
२४. द्विगुणं रजनीमूलं	११०
२५. पशुं शठञ्च	११५

२६. पशुमात्र समायोगात्	११५
२७. पशोरालापनाद्देवि	११
२८. पशोर्वापि	११
२९. पूजयित्वा	११
३०. पूर्वोक्तमंत्रज्ञानेन	११
३१. पूर्वं सञ्ज्ञात्	११
३२. मधुलुब्धो	११
३३. यं यं भावं	११
३४. येन केन	११
३५. यो गच्छेद	११
३६. रजनी	११
३७. रजन्याथ	११
३८. रजन्या	११
३९. ललाटे	१०
४०. शतमेकं	१०
४१. स एव	११
४२. सहस्त्रं	१०
४३. सिद्धविद्या	११

त्रयोदश: पटल:

१. अथान्यात्	११
२. अष्टम्याञ्चं	११
३. कलापूजाक्रमेणैव	११
४. कुलश्च सर्वजातीनां	११
५. चिता यं रजनीगेह	११
६. तत्पार्श्वे	११
७. तदुद्भवनेन	११

८. तत्र पूजां	११९
९. तासाञ्च	११५
१०. तिथिक्रमेण कामेन	११८
११. त्रिसूत्रं वीक्ष्य	११७
१२. देवीं सहस्त्रं	११९
१३. द्विजजातोषणादेव	११६
१४, पद्मध्यं तथा	११७
१५. पर्वते हस्तमारोप्य	११७
१६. पुनश्च तत्र	१२०
१॰. ब्रह्मतरी	११८
१८, मध्यमा रहिता	११६
१९. महाभूतादिने	१२०
२०. मृते च	११९
२१. रजनीद्विगुणानां	११७
२२. रजनीरजसां	१२०
२३. लिखित्वा यंत्रमंत्रञ्च	११९
२४. शवासनाधिकफलं	१२०
२५. श्यामाविद्या	११६
२६. सम्पूज्य रजनीं	११७
२७. सम्पूज्य रजनीगेहे	११८
२८. सर्वावस्थां परित्यज्य	११६
२९. सिद्धविद्या न	११६
३०. श्री विद्या न	११६

चतुर्दशः पटलः

१. अंगुष्ठानामिकायोगाद्	१३८
२. अंगुष्ठो भैरवो	१३९
३. अथान्यं	१३८
४. असिताङ्गऽयो	१३६
५. आगमोक्तपतिः	१२९
६. आगमोक्तपतिस्त्राता	१९९
७. आगमोक्तपतिर्देवि	१३०
८. आमंत्रणं त्रिसंध्याञ्च	१२३
९. एवम्बिधा	१२४
१०. कामाद्वा लोभतो	१२६
११. कुलजा कुलवेश्या	१२१
१२. कुलजा कुलवेश्या	१३४
१३. कुलजाक्रमेणैव	१३२
१४, कुलजा गुप्तवेश्या	१२१
१५. कुलजा गुरवे	१३०
१६. कुलजा गुरवे	१३०
१७. कुलजा देवकन्या	१३२
१८. कुलटासङ्गमादेव	१२५
१९. कुलजाः कुलवेश्या	१३२
२०. कुलधर्मरता	१३४
२१. कुलधर्मविना	१३५
२२. कुलपूजां विना	१३५
२३. कुलपूजां विना	१३५
२४. कुल मार्गे	१२२
२५. कुलवर्त्मक्रमेणैव	१३२
२६. कुलवेश्या कुलीना	१२१
२७. कुलीनां भगवती	१३१
२८. कुलीना ब्रह्मवेश्या	१२८

२९. कुलीना दर्शनेनैव	१३५
३०. कुलीना सुन्दरी	१३२
३१. गंगास्मरणमात्रेण	१३४
३२. गाढमालिङ्गनम्	१२४
३३. गुप्तवेश्या भवेत्	१३०
३४. गुप्तवेश्या	१३१
३५. गुप्तवेश्या महावेश्या	१२१
३६. चतुर्वर्णोऽभवा	१३७
३७. जपपूजादिकं	१२७
३८. जपाङ्गत्वेन	१२३
३९. जप्त्वाप्रणम्य	१३३
४०. तत्वज्ञानं	१३५
४१. तन्मंत्रं पूजितं	१२७
४२. त्वत्समाः प्रकृतिः	१२८
४३. त्रयोदशी	१३०
४४. दिव्यशक्तिर्वीरशक्तिस्तासां	१२२
४५. धूमावती	१३२
४६. नटी कपालिका	१३६
४७. नानावीराश्रिता	१२६
४८. नानावीराश्रिता	१२६
४९. निर्वाण	१३६
५०. निशायां	१२३
५१. पतिव्रता	१३२
५२. परस्मिन्	१२८
५३. पितुभूमिः	१२७
५४. पूजाद्रव्यं	१३७
५५. पूजाद्रव्यं	१३७
५६. पूजाद्रव्यं	१३७
५७. पूजाद्रव्यं	१३८
५८. पूजाद्रव्यं	१३८
५९. ब्रह्मचारी	१३३
६०. ब्रह्माविष्णुश्च	१३६
६१. महाकाली	१३१
६२. महावेश्या	१३५
६३. मातृमुखे	१२७
६४. योगी दिव्यो	१३१
६५. योनिश्च	१२५
६६. योषितां	१२४
६७. योषिद्विद्या	१२४
६८. राजवद् या	१२२
६९. रोगः शोको	१२६
७०. लिङ्गरूपो	१२५
७१. लोकाचरक्रमेणैव	१३४
७२. विपरीतरतौ	१२४
७३. विवाहितपतित्यागे	१२९
७४. वेश्या च	१२१
७'. वेश्वावत्	१२२
७६. शक्त्यभावे	१३८
७७. शक्ति विना	१३६
७८. शिवशक्तिसमायोगा	१३७
७९. शिवस्थानं	१२७
८०. शिवलिङ्गता	१२५

१. शुक्रोत्सारणकालन्त	१२८
२. शुक्रोत्सारणकालस्यं	१२८
३. षोढ़शब्दा	१३०
४. सर्वदा यन्त्रसंस्कारो	१३८
५. सर्ववेश्या	१३५
६. सा चैव	१२९
७. श्रेष्ठञ्च	१३९
८. स्वभैरव	१२५
९. स्वभैरवीं	१२६
०. हीनजासङ्गमं	१३३
१. हीनजां	

पञ्चदशः पटलः

१. अंगन्यासकरन्यासौ	१४१
२. अष्टदिक्षु	१४२
३. आद्यष्टदेवाः	१४२
४. इति ध्यात्वा	१४७
५. इतिमन्त्रयेणैव	१४६
६. ॐ एकमेव	१४६
७. ॐ रीं रीं कं	१४६
८. ॐ वेदानां	१४६
९. ॐ सूर्यमण्डलसम्भूते	१४६
१०. एवं सुधूपितं	१४४
११. काली तारा तथा	१४८
१२. काली तारा महाविद्या	१४८
१३. कृत्वा पुटाञ्जलिम्	१४३
१४. क्रमभङ्गो	१४१
१५. घटं सम्पूरयेद्देवि	१४२
१६. जीधन्यास	१४१
१७. ततश्च पञ्चमं	१४१
१८. तत्रापि पञ्चमुद्राभि	१४३
१९. त्रि परिभ्राम्य	१४४
२०. त्रिकोणं तत्र	१४५
२१. देवदेव महादेव	१४०
२२. नमः इति	१४२
२३. नात्र कालविशुद्धिः	१४८
२४. निशीथे	१४०
२५. पावमानः	१४७
२६. पुटाकारं	१४३
२७. पूजयित्वा	१४४
२८. प्रणवं	१४५
२९. प्रणायामं	१४१
३०. बलिमुतसृज्य	१४४
३१. मद्यं मांसं	१४०

३२. मायाबीजं	१४५
३३. मूलेन	१४५
३४. रमिति	१४७
३५. लीनं हयं	१४७
३६. वागभवं	१४५
३७. वृद्धाकनिष्ठयोर्मूले	१४३
३८. सम्पूज्य	१४५
३९. सः नमो	१४४
४०. स्वगात्रे	१४०
४१. स्ववामे	१४२
४२. हमिति	१४४
४३. ह्रीं क्लीं	१४६

11868

॥ क्लीं ॥

निरुत्तरतन्त्रम्

प्रथमः पटलः

श्रीगणेशाय नमः । ॐ नमः परमदेवतायै ।

श्रीदेव्युवाच

सिद्धविद्याः पुरा प्रोक्तास्तन्त्रमन्त्रादिकानि च ।
नानाभावप्रभेदेन संशयो जायते प्रभो ॥ १ ॥

श्री देवी कहती हैं—हे प्रभो ! पूर्व काल में आपने सिद्धविद्या, नाना प्रकार के तन्त्र-मन्त्र प्रभृति का उपदेश दिया है, इससे मेरे मन में सन्देह हो रहा है ॥ १ ॥

भावभेदेन कथय लोकनिस्तारकारक ।
सर्वेषां शरणं तन्त्रसिद्धान्तं विष्णुसम्मतम् ॥ २ ॥

हे लोकसमूह का उद्धार करने वाले ! विष्णुसम्मत तथा सब के लिये शरण लेने योग्य तन्त्र-सिद्धान्त को विभिन्न प्रकार से कहिये ॥ २ ॥

आसामाराधना केन भावेन परिजायते ।
आसां वा प्रकृतिः कापि तस्या वा कीदृशी क्रिया ।
तत् प्रकाशय सम्यग् मे येन यामि निरुत्तरम् ॥ ३ ॥

किस प्रकार से इन सिद्धविद्या समूह की आराधना होती है ? इन सिद्धविद्या समूह का मूल उपादान (प्रकृति) क्या है ? उनकी क्रिया क्या है ? इन सबका आप सम्यक् रूप से प्रकाशन करें, ताकि मैं निरुत्तर (शंका रहित) हो सकूँ ॥ ३ ॥

श्रीशिव उवाच

सर्वासां सिद्धविद्यानां प्रकृतिर्दक्षिणा प्रिये ।
दिव्यैर्वा वीरभावैर्वा चिन्तयेद्दक्षिणां शुभाम् ॥ ४ ॥

श्री शिव कहते हैं—हे प्रिये ! समस्त सिद्धविद्याओं की प्रकृति हैं भगवती दक्षिणाकाली। इन्हीं दक्षिणादेवी का चिन्तन दिव्यभाव से, किंवा वीरभाव से करना चाहिये ॥ ४ ॥

दिव्यभावैश्च वीरैश्च कालीकुलं विचिन्तयेत् ।
श्रीकुलञ्च त्रिभिः सर्वैश्चिन्तयेत् कुलसुन्दरि ॥ ५ ॥

हे कुलसुन्दरी ! इन कालीकुल (काली तथा उनके गणसमूह) का चिन्तन दिव्यभाव एवं वीरभाव से करना चाहिये। इसी प्रकार श्रीकुल (लक्ष्मी तथा उनके गणसमूह) का चिन्तन दिव्य, वीर एवं पशुभाव से करे ॥ ५ ॥

(कालीश्रीकुलवर्णनम्)

काली तारा रक्तकाली भुवना महिषमर्दिनी ।
त्रिपुरा त्वरिता दुर्गा विद्या प्रत्यङ्गिरा तथा ॥ ६ ॥
कालीकुलं समाख्यातं श्रीकुलञ्च ततः परम् ।
सुन्दरी भैरवी बाला बगला कमलापि च ॥ ७ ॥
धूमावती च मातङ्गी विद्या स्वप्नावती प्रिये ।
मधुमती महाविद्या श्रीकुलं परिभाषितम् ॥ ८ ॥

(कालीकुल तथा श्रीकुल का वर्णन)

काली, तारा, रक्तकाली, भुवना, महिषमर्दिनी, त्रिपुरा, त्वरिता, दुर्गा, विद्या, प्रत्यंगिरा को कालीकुल कहा गया है।

सुन्दरी, भैरवी, बाला, बगला, कमला, धूमावती, मातङ्गी, विद्यास्वप्नावती, मधुमति एवं महाविद्या को श्रीकुल कहते हैं ॥ ८ ॥

लतायां पूजयेत् कालीं नीले नीलसरस्वतीम् ।
कालिकैव लतामूला नीलमूला च तारिणी ॥ ९ ॥
उभयोरुभयोः पूजा सा पूजा मोक्षदायिनी ।
विशिष्टा चेन्महासिद्धिर्देवानामपि दुर्लभा ॥ १० ॥

लता (कुलसुन्दरी) में काली की पूजा करे। नील द्रव्य में नीलसरस्वती की पूजा करना चाहिये। कालीपूजा का अधिष्ठान द्रव्य है लता और नीलसरस्वती (तारा) पूजा का अधिष्ठान द्रव्य है नील।

लता तथा नीलद्रव्य में काली एवं तारा की पूजा मुक्तिदायिका हो जाती है। यदि इस पूजन को विशेषरूप से किया जा सके, उस स्थिति में यह पूजा देवदुर्लभ महासिद्धि देने वाली हो जाती है ॥९-१०॥

लतानीलं विना देवि कालीं ताराञ्च पूजयेत् ।
कुलनाथं समाश्रित्य चोपदेशं प्रकल्पयेत् ॥ ११ ॥

हे देवी ! लता तथा नील द्रव्य के बिना क्रमशः काली एवं तारा की पूजा करने वाला व्यक्ति तो कुलनाथ (गुरु) को उपदेश देने का व्यर्थ कृत्य करने वाला हो जाता है, अर्थात् उसकी पूजा व्यर्थ हो जाती है ॥ ११ ॥

कुलनाथं विना देवि मन्त्रं तन्त्रं न सिद्ध्यति ।
भावस्तु त्रिविधो देवि तथैव मन्त्रदेवता ॥ १२ ॥

हे देवी ! कुलनाथ (गुरु) के बिना मन्त्र सिद्ध नहीं होते। हे देवी ! भाव तीन प्रकार के हैं और मन्त्रदेवता भी तीन प्रकार के हैं। तन्त्रोक्त कालीकुल अथवा श्रीकुल के देवताओं की साधना का उपदेश जो देते हैं, वे ही हैं कुलनाथ। इनके बिना मन्त्र अथवा तन्त्र का अनुष्ठान सिद्ध नहीं हो सकता ॥ १२ ॥

कुलशास्त्ररता ज्ञेया गुरवो बहवः स्मृताः ।
कुलशास्त्रविशेषज्ञो गुरुरेको हि दुर्लभः ॥ १३ ॥

कुलशास्त्र (तन्त्र) में रत अनेक गुरुओं का नाम सुना गया है, परन्तु कुलशास्त्रविशेषज्ञ एक भी गुरु अत्यन्त दुर्लभ होता है ॥ १३ ॥

पशुगुरोर्मुखांल्लब्ध्वा पशुरेव न संशयः ।
वीरगुरोर्मुखांल्लब्ध्वा वीर एव न संशयः ॥ १४ ॥
दिव्यगुरोर्मुखांल्लब्ध्वा दिव्य एव न संशयः ॥ १५ ॥

पशुश्रेणी के (मनुष्य) गुरु से मन्त्र प्राप्त करने पर व्यक्ति पशु स्थिति में ही रहता है । वीर गुरु द्वारा प्राप्त मन्त्र साधक को वीर बना देते हैं । दिव्य गुरु से प्राप्त मन्त्र द्वारा साधक दिव्य भाव में उपनीत हो जाता है, यह निःसंदिग्ध उक्ति है । अधम अधिकारी के लिये पशुभाव, मध्यम अधिकारी साधक के लिये वीरभाव तथा उत्तम अधिकारी के लिये दिव्यभाव आश्रयणीय है ॥ १४-१५ ॥

(पशुवीरदिव्यभावाः)

दिव्ये वीरे च यो भेदः स भेदः परिभाष्यते ।
दिव्यश्च देवताप्रायो वीरश्चोद्धतमानसः ॥ १६ ॥

(पशु, वीर तथा दिव्य भाव)

दिव्य तथा वीरभाव का पारस्परिक भेद इस प्रकार से है । जो दिव्य अधिकार वाले मन से युक्त हैं, वे देवता के समान हैं । जिनका मन प्रौढ़भावान्वित (उद्धत) है, वे वीर कहलाते हैं ॥ १६ ॥

पूर्वाम्नायोदितं कर्म पाशवं परिकीर्त्तितम् ।
यदुक्तं दक्षिणाम्नाये तदेव पाशवं स्मृतम् ॥१७॥
पश्चिमाम्नायजं कर्म वीरपशुसमन्वितम् ।
उदङ्मुखोदितं कर्म दिव्यभावान्वितं प्रिये ॥१८॥

जो कर्म तंत्रसाधना में पूर्वतन्त्रों में कहा गया है, वह पाशव कर्म है दक्षिणतंत्रों (दक्षिणाचार) में जो कुछ कहा गया है, वह तन्त्रोक्त कर्म भी पाशव कर्म ही है । हे प्रिये ! पश्चिमाम्नाय (मध्यमभाव) में जो वर्णित हुआ है, वह वीरभाव तथा पशुभाव—दोनों से युक्त है । जो कर्म उत्तरमुख (उत्तर रूप) से तन्त्र के रूप में कहा गया है, वह है दिव्यभाव युक्त ॥१७-१८॥

दिव्योऽपि वीरभावेन साधयेत् पितृकानने ।
उर्ध्वाम्नायोदितं कर्म दिव्यभावाश्रितं प्रिये ॥१९॥

दिव्यभावान्वित साधक को भी श्मशान में वीरभाव से साधना करना चाहिए । हे प्रिये ! जो तन्त्र उर्ध्वाम्नाय के अन्तर्गत हैं, उन तन्त्रोक्त कर्मों को दिव्यभावयुक्त समझो ॥१९॥

श्मशानगामिनो वीराः कलां पूजन्ति सर्वदा ।
श्मशानगामिनो वीरा गुप्ता योनीव पार्वति ॥२०॥

श्मशानगामी वीरगण सदैव मूल प्रकृतिरूप दक्षिणाकाली के अंशस्वरूप देवगण का पूजन करते हैं । जो वीरभावापन्न साधक श्मशान-साधना करते हैं, वे योनि के समान सदा गुप्तरूप से साधनरत रहते हैं ॥२०॥

गोपनात् सिद्धिमाप्नोति व्यक्ताच्च कुलनाशनम् ।
दिव्यवीरान्वितं कर्म फलदं गोपनान्वितम् ॥२१॥

यदि श्मशान के वीराचारी साधक अपनी साधना को गुप्त रखते हैं, तभी उन्हें सिद्धि प्राप्त होती है, अन्यथा (साधना व्यक्त हो जाने पर) उनका कुल-नाश अवश्य हो जाता है । (कुलनाश = कुलसाधना का नाश) दिव्य तथा वीरभाव का कर्म गोपनीय रखने पर ही फलदायक होता है ॥२१॥

देवतागुरुमन्त्राणां प्रभावं दर्शयेत्ततः ।
दिव्यौषधीनां वीराणां यद्यत् कर्म च योगिनाम् ।
तत्सर्वं गोपनं कार्यं प्रकाशान्निष्फलं भवेत् ॥२२॥

गोपनीयता से साधनरत रहने पर ही देवता, गुरु तथा मन्त्र का प्रभाव और दिव्यौषधियों का प्रभाव परिलक्षित होता है । वीरभावापन्न योगी के लिये समस्त कर्म को गुप्त रखना उचित है । इन्हें प्रकट कर देने से समस्त कर्म निष्फल हो जाते हैं ॥२२॥

रात्रौ कुलक्रिया कुर्याद्दिवा कुर्याच्च वैदिकीम् ।
दिवारात्रौ यजेद्देवीं योगी योगप्रभेदतः ॥२३॥

योगी तथा साधकों को अपने-अपने योग के अधिकार भेद के अनुरूप रात्रि में तांत्रिक क्रिया करनी चाहिये। दिन में वैदिक क्रिया और रात्रि में देवीपूजन करे ॥२३॥

न दिवा पूजयेद्वीरो न पशु रात्रिपूजनम्।
विवर्जयेन्महेशानि अभिचाराय कल्पते ॥२४॥

वीराचारी को दिन में पूजन नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार पशुभाव का साधक रात्रि में पूजन न करे। हे महेशानी! वीरसाधक दिवापूजा का वर्जन करे और पशुसाधक रात्रिपूजा का वर्जन करे। अन्यथा उनकी पूजा अभिचार कर्म के समान हो जाती है ॥२४॥

कलापूजां विधायाथ मनसा वा कुलेश्वरीम्।
पूजयेद्दक्षिणां कालीं श्मशाने कुलसाधकः ॥२५॥

तांत्रिक साधक को चाहिये कि वह काली के अंगदेवताओं की पूजा करके अथवा उनकी मानसिक पूजा करके कुलेश्वरी श्रीमद् दक्षिणाकाली की श्मशान में पूजा करे ॥२५॥

(दक्षिणाकालिकायाः अर्चनम्)

श्मशानं दक्षिणास्थानं श्मशानञ्च सदाशिवम्।
योनिरूपा महाकाली शवशय्या प्रकीर्तिता ॥२६॥

(दक्षिणाकालिका की अर्चना)

दक्षिणाकालिका का स्थान है श्मशान, जो सदाशिवस्वरूप है। योनिरूपा महाकाली ही शवशय्या कहलाती है ॥२६॥

श्मशानं द्विविधं देवि चिता योनिः प्रकीर्तिता।
शिवलिङ्गं कुलेशानि महाकालेन भाषितम् ॥२७॥

हे देवी! श्मशान दो प्रकार के कहे गये हैं। हे कुलेशानी! (कुलदेवता की नियंत्रिका) चिता को योनि कहा गया है; अतः वह एक प्रकार से

श्मशान है। दूसरा श्मशान है शिवलिंग। यह महाकाल द्वारा बतलाया गया है ॥२७॥

द्वयोर्योगं विना नैव दक्षिणा सा फलप्रदा।
त्रिपान्तरे कलापूजां कर्तव्या साधकोत्तमैः ॥२८॥

योनि तथा लिंग (शक्ति-शिव) के योग के अभाव में दक्षिणाकाली फलदात्री नहीं होती। साधकों का यह कर्त्तव्य है कि वे इडा-पिंगला-सुषुम्ना में काली के कलादेवतागण (अंशदेवतागण) का पूजन करे ॥२८॥

कलापूजां विना देवि दक्षिणा न फलप्रदा।
कलापूजां कृता येन तेन काली प्रपूजिता ॥२९॥

हे देवी! इस कलादेवतागण की पूजा के बिना दक्षिणकालिका फलदायिनी नहीं होती। जो कलापूजा कर लेते हैं, मानों उन्होंने कालीपूजन कर लिया ॥२९॥

कलापूजा कृता येन शिव एव न संशयः।
कलापूजाकृतो दिव्यो वीरो वा कुलसुन्दरि।
इहैव सुखमाप्नोति परे निर्वाणतां व्रजेत् ॥३०॥

जिन्होंने कलापूजा सम्पन्न किया है, वे निःसंदिग्ध रूप से शिव हैं। हे कुलसुन्दरी! जिन्होंने इस पूजा को किया है, वे दिव्य अथवा वीर साधक इस लोक में सुख प्राप्त करके अन्त में निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं ॥३०॥

न चार्चयेत् कलां यस्तु जपेद्दक्षिणां शुभाम्।
निष्फलं जीवनं तस्य क्रुद्धा भवति कालिका ॥३१॥

जो कलादेवतागण की पूजा नहीं करते एवं दक्षिणाकाली का शुभ जप नहीं करते, उनका जीवन निष्फल है। उन पर भगवती कालिका देवी क्रोधित हो जाती हैं ॥३२॥

कलापूजां विना देवि सर्वं निष्फलतां व्रजेत्।
जन्मान्तरसहस्रेषु काली नैव प्रसीदति ॥३२॥

हे देवी ! कलापूजा के अभाव में सब कुछ निष्फल हो जाता है । इसके बिना हजारों जन्मों में भी कालिका प्रसन्न नहीं हो सकतीं (कला का अर्थ स्त्रीमूर्त्ति भी है) ॥३३॥

कलापूजां विना देवि या काचित् क्रियते क्रिया ।
सा क्रिया अभिचाराय सत्यं सत्यं न संशयः ॥३४॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कलापूजां समाचरेत् ।
योनिरूपा कला देवि दक्षिणैव न संशयः ॥३३॥

हे देवि ! कलापूजा (स्त्रीमूर्त्ति की देवीभाव से पूजा) के बिना समस्त क्रिया अभिचार कर्म के समान हो जाती है । यह सत्य है, सत्य है, निःसंशय है ।

अतः समस्त प्रयत्न द्वारा कलापूजा का आचरण करना चाहिये । हे देवी ! योनिरूपा कला साक्षात् दक्षिणाकाली है, यह निःसंदिग्ध है ॥३४॥

दिव्यो वीरो वरारोहे कलापूजां प्रकल्पयेत् ।
पशुभावाश्रितो मन्त्री कलां नैव प्रपूजयेत् ॥३५॥

हे वरारोहे ! दिव्य एवं वीर भाव वाले साधक कलापूजा करें, परन्तु पशुभावापन्न मन्त्रजपकर्त्ता को कलापूजा नहीं करना चाहिये ॥३५॥

कलाया द्विविधा पूजा गुप्ता व्यक्ता कुलेश्वरि ।
गुप्ता च साधकैः कार्या निर्जने च महानिशि ॥३६॥

कला की पूजा दो प्रकार से होती है । गुप्त रूप से एवं प्रकट रूप से । हे कुलेश्वरी ! साधकगण महानिशा में निर्जन स्थल पर कला का गुप्त पूजन करते हैं । (जो काम-क्रोध से आक्रान्त नहीं होते ऐसे वीर साधक तथा स्थितप्रज्ञ दिव्य साधक १०½ बजे से ३½ बजे रात्रि के बीच एकान्त में गुप्ततः यह कलापूजा (नायिकापूजा, लतापूजा, स्त्रीपूजा) करते हैं[1] ॥३६॥

---

१. प्रकाश्य कलापूजन को दिव्य भाव से किया जाता है । यह लोकाचार क्रम के अनुसार करना चाहिये । लोकाचार वाली पूजा को गुप्त रूप से न करे और गुप्त पूजा को कदापि लोकाचार क्रम से न करे ।

(कलापूजाप्रशंसा)

गोपनं सिद्धिमूलञ्च सत्यं सत्यं न संशयः ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च कुलसुन्दरि ॥
कलावासवयोगेन कलापूजां प्रकल्पयेत् ॥३७-३८॥

(कलापूजा की प्रशंसा)

हे कुलसुन्दरी ! साधन कर्म की गोपनीयता ही सिद्धि का मूल है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र भी मन्त्र द्वारा कलापूजन इस कलिकाल में करे ॥३८॥

द्रव्याभावे द्विजो दद्याच्चानुकल्पं युगे युगे ।
कलायाश्चानुकल्पश्च कलायाश्चैव चिन्तनम् ॥३९॥

यदि पूजन में किसी द्रव्य का अभाव हो गया हो, वह अप्राप्त हो, उस स्थिति में एक सामग्री के स्थान पर अन्य सामग्री का प्रयोग (शास्त्र ने) बतलाया है । युग-युग में कलादेवता का अनुकल्प यह है कि कलादेवता का चिन्तन करना ॥३९॥

द्विजातीनाञ्च सर्वेषां द्विधा विधिरिहोच्यते ।
दिवा च पाशवं कर्म रात्रिकर्म च कौलिकम् ।
पुरश्चर्यादिकं कर्म द्विविधं भावभेदतः ॥४०॥

समस्त द्विजों के लिये दो प्रकार का विधि-विधान शास्त्र ने कहा है । दिन में पशुसाधना का कर्म और रात्रि में कौलिक (वीर एवं दिव्य) कर्म करना चाहिये । भावना प्रभृति के भेद से पुरश्चरण कर्म भी दो प्रकार के होते हैं । ॥४०॥

॥इति श्रीनिरुत्तरतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे प्रथमः पटलः॥

। प्रथम पटल समाप्त ।

द्वितीयः पटलः

श्रीदेव्युवाच—

देवदेव महादेव सृष्टिस्थितिलयात्मकः ।
कीदृशी दक्षिणा काली तस्या मन्त्रश्च कीदृशः ॥१॥
पूजा वा कीदृशी तस्याः पूजायाः कीदृशं फलम् ।
गुर्वा कीदृशो देव पुरश्चर्या च कीदृशी ॥२॥
साधनं कीदृशं तस्याः फलं तस्य च कीदृशम् ।
तत्प्रकाशय सम्यङ्मे येन यामि निरुत्तरम् ॥३॥

श्रीदेवी कहती हैं—हे देवदेव ! महादेव ! सृष्टि, स्थिति तथा लयस्वरूप दक्षिणाकाली किस प्रकार की हैं, उनका मन्त्र कैसा है, उनकी पूजा कैसी है, उस पूजा का फल क्या है ? हे देव ! गुरु का स्वरूप क्या है, पुरश्चरण क्या है ? पुरश्चरण का साधन क्या है, उस साधना का फल किस प्रकार का है ? मेरे इन समस्त प्रश्नों का आप सम्यक् उत्तर प्रदान करें, जिससे मैं निरुत्तर (शंकाशून्य) हो सकूँ ॥१–३॥

श्रीशिव उवाच—

भगं भगवती ज्ञेया दक्षिणा त्रिगुणेश्वरि ।
चराचरमिदं सर्वं भगरूपं कुलेश्वरि ॥४॥

श्री शिव कहते हैं—हे कुलेश्वरी ! भग को ही त्रिगुण की ईश्वरी भगवती दक्षिणाकालिका जानो । यह सचराचर सब कुछ भगरूप ही है ॥४॥

महत्वादीनि सर्वाणि त्रिविधं परिकथ्यते ।
हकारार्धकला सूक्ष्मा योनिमध्यस्वरूपिणी ॥५॥

महत् प्रकृति तीन प्रकार की कही गयी है । 'ह' कार एवं अर्धकला तथा सूक्ष्म योनिमध्यस्वरूपिणी महत् । (इस तत्त्व की विवेचना ग्रंथ के प्रारंभ में अंकित निवेदन में की गई है) ॥५॥

(दक्षिणाकालिकायाः स्वरूपम्)

योनिश्च दक्षिणाकाली ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका ।
त्रिकोणे च त्रयो देवाः शिवविष्णुपितामहाः ॥६॥

(दक्षिणकालिका का स्वरूप)

योनि को ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवस्वरूप दक्षिणाकाली जानों । त्रिकोणाकार योनि के कोण पर क्रमशः ब्रह्मा-विष्णु-शिव स्थित हैं ॥६॥

योनिमध्ये वसेद्देवी कालिका कुलसुन्दरी ।
ज्योतिरूपा महाकाली शुक्ररूपा प्रपञ्चसुः ॥७॥

योनिमध्य में कुलसुन्दरी कालिका निवास करती हैं । वे ज्योतिस्वरूपा हैं । वे महाकाली हैं और शुक्ररूपा जगत्प्रसविनी भी हैं ॥७॥

शुक्रतो जायते विश्वं शिवशक्तिप्रभेदतः ।
शिवशक्तिर्द्विधा देवि निर्गुणा सगुणापि च ॥८॥

समस्त विश्व शुक्र से उत्पन्न होता है (विश्व = जीवगण) । इनमें से पुरुषबीज शिवस्वरूप है और स्त्रीबीज शक्तिस्वरूप । अर्थात् पुरुष शिव-स्वरूप हैं और स्त्री शक्तिस्वरूप हैं । हे देवी ! शिव तथा शक्ति भी द्विविध हैं—निर्गुण एवं सगुण ॥८॥

निर्गुणा ज्योतिषा वृन्दं परं ब्रह्म सनातनी ।
परञ्च पुरुषं विद्धि महानीलमणिप्रभम् ॥९॥

ज्योतिसमुदायात्मक परब्रह्म निर्गुणा सनातनी शक्तिस्वरूपा हैं । परम पुरुष (ईश्वर को) महानीलमणि प्रभा के समान द्योतित हैं ॥९॥

ज्योतिश्च दक्षिणा काली दूरस्था स्यात् प्रपञ्चसुः ।
विपरीतरता काली निर्गुणा सगुणापि च ॥१०॥

ज्योति = दक्षिणाकाली । वे दूरस्थ रहते हुए जगत् को प्रसवित करती हैं । (अर्थात् वे जगत् से परे रहकर भी जगन्मयी हैं ।) विपरीतरमण युक्ता

काली हैं—निर्गुण तथा सगुण उभयरूपा। विपरीतरमण = जब शक्ति प्रधान है और शक्तिमान अप्रधान है। अर्थात् जगत्-प्रपंच में सब कुछ शक्ति का ही उल्लास है। शिव मात्र इसके निरपेक्ष द्रष्टा रहते हैं। शक्ति इस रूपात्मक जगत् में सगुणरूपा हैं और शक्त्यात्मक जगत् में निर्गुण रूप रूपात्मकता तथा शक्त्यात्मकता यह दोनों इसी जगत् में परिलक्षित होती है ॥१०॥

अमा स्यान्निर्गुणे सापि अनिरुद्धसरस्वती।
सगुणा सुरगर्भे च महाकालनिरूपिणी ॥११॥

अमा नामक शक्ति निर्गुण है। अमाशक्ति ही अनिरुद्ध सरस्वतीस्वरूपा भी है। हे सुरगर्भे! सगुणाशक्ति महाकाल की निरूपणकारिणी स्थिति है। अर्थात् महाकाल का स्वरूपनिर्धारण काली के ही द्वारा होता है। (अमाशक्ति का विवरण ग्रंथारंभ में निवेदन में दिया गया है) ॥११॥

नारीरूपं समास्थाय सैव विश्वं प्रसूयते।
विष्णुमाया महालक्ष्मी मोहयत्यखिलं जगत् ॥१२॥

महाकाल का निरूपण (कलन) करने वाली काली ही नारीरूपा होकर विश्व को प्रसवित करती हैं। पुनः वे ही विष्णुमाया महालक्ष्मीरूपा होकर निखिल जगत् को मोहित भी करती हैं ॥१२॥

सहवानेव सा देवी योनिमार्गं चराचरम्।
देवमार्गमिदं विश्वं देवमार्गनिषेवितम् ॥१३॥

वह देवी (महाकाली) शिव के साथ विद्यमान रहकर योनिमार्ग द्वारा चराचर विश्व को मोहित करती रहती हैं। योनिमार्ग = शरीर। शिवसूत्र में शरीर को ही योनि कहा गया है। स्थूल-सूक्ष्म-कारण-महाकारण-अतिवाहिक-तैजस आदि विभिन्न स्तर के शरीर होते हैं। शरीर में ही मोह कार्यकारी होता है। शरीर ही योनि है।

यदि चर एवं अचर जीवगण शास्त्रानुरूप कर्म उपासना प्रभृति का आश्रय लेते हैं, तब वे देवमार्ग पर अग्रसर होकर देवभाव को प्राप्त करते हैं ॥१३॥

शिवशक्तिमयं तत्त्वं तत्त्वज्ञानस्य कारणम्।
बहूनां जन्मनामन्ते शक्तिज्ञानं प्रजायते ॥१४॥

समस्त तत्त्वसमूह अथवा पदार्थ शिवशक्तिमय हैं। वे शिव-शक्ति से अभिन्न नहीं हैं। इन्हीं शिव-शक्ति की उपासना से तत्त्वज्ञान प्राप्त होता है। अनेक जन्मों के प्रयास से सर्वान्त में शक्तिज्ञान (कौलज्ञान) उदित होता है ॥१४॥

शक्तिज्ञानं विना देवि निर्वाणं नैव जायते।
सा शक्तिर्दक्षिणाकाली सिद्धिविद्यास्वरूपिणी ॥१५॥

हे देवी! शक्तिज्ञान के अभाव में मोक्ष नहीं मिलता। यही शक्ति हैं सिद्धविद्यास्वरूपिणी दक्षिणाकाली ॥१५॥

सिद्धविद्यासु सर्वासु दक्षिणा प्रकृतिः पुमान्।
अविनाभावसम्बन्धस्तयोरेव परस्परम् ॥१६॥

समस्त सिद्धविद्याओं में दक्षिणाकाली उपादान (प्रकृति) हैं। शिवरूप पुरुष तथा दक्षिणाकाली प्रकृति का पारस्परिक अविच्छेद्य सम्बन्ध विद्यमान रहता है ॥१६॥

(दक्षिणाकालिकायाः स्वरूपं मन्त्रश्च)

शिवोऽपि तत्र युक्तश्चेच्छक्तिः स्याच्छिवयोगतः।
तयोर्योगमयं तत्त्वं तयोर्योगेन चिन्तनम् ॥१७॥

(दक्षिणाकाली का स्वरूप एवं मन्त्र)

जब शिव शक्ति से युक्त होते हैं, तब वे शक्ति ही हो जाते हैं और जब शक्ति शिव से युक्त होती हैं, तब वह शिव हो जाती हैं ॥१७॥

तयोर्योगमयं तत्त्वं तयोर्योगेन संजपेत्।
तयोर्मन्त्रं महामन्त्रं भोगमोक्षप्रदायकम् ॥१८॥

मन्त्रसमूह शिवशक्तिमय है। अर्थात् वे शिवशक्ति से ओतप्रोत हैं। तात्पर्य यह है कि सहस्रार में शिव के साथ कुण्डलिनी का सामरस्य करके मंत्र-जप करे। यही है महामन्त्र। इससे भोग एवं मोक्ष दोनों प्राप्त होता है।

ब्रह्मरंध्र के स्पन्दन का अनुभव करते हुये उस परविमर्शमय स्पन्दन में मन्त्रभावना करना ही सहस्रार में कुण्डलिनी सामरस्य युक्त मन्त्रजप है। इस जप से भोग (अर्थात् सामरस्यमय आनन्द) तथा मोक्ष से परे अर्थात् उस आनन्द से भी परे निरानन्दमयी आत्मदशा की प्राप्ति होती है, जहाँ आनन्द का भी विसर्जन हो जाता है; यही है मोक्ष ॥१८॥

भोगेन लभते मोक्षं सालोक्यादिचतुष्टयम् ।
महाकल्पतरुः काली अनिरुद्धसरस्वती ॥१९॥

इस भोगयुक्त साधना द्वारा (सामरस्यमय आनन्दास्वाद रूपी भोग द्वारा) सालोक्य-सारूप्य-सार्ष्टि तथा सामीप्य रूपी चतुर्धामुक्ति प्राप्त होती है। काली हैं महाकल्पतरुरूपा। यही काली हैं अनिरुद्धस्वरूपा ॥१९॥

ब्रह्मविष्णुमहेशानां भुक्तिमुक्त्येककारणम् ।
सा काली गुरुतो राध्या मन्त्रतन्त्रस्वरूपिणी ॥२०॥

काली ही ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर की भुक्ति तथा मुक्ति की एकमात्र कारण हैं। गुरु से उपदेश (दीक्षा) प्राप्त करके इन काली की ही आराधना करना चाहिये। ये ही हैं मन्त्र तथा तन्त्र स्वरूपा ॥२०॥

अथ वक्ष्ये कुलेशानि दक्षिणाकालिकामनूम् ।
तेन विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तः प्रजायते ॥२१॥

हे कुलेशानी ! अब दक्षिणाकालिका का मन्त्र कहता हूँ। इस मन्त्र के जानने मात्र से जीवन्मुक्ति मिल जाती है ॥२१॥

ब्रह्मासनयुतं देवि नादविन्दुसमन्वितम् ।
वामनेत्रार्णसंयुक्तं चित्स्वरूपं परापरम् ॥२२॥

ब्रह्मासन है जल। (ब्रह्मा विष्णु के नाभिपद्म से उद्भूत हैं। वे जल में अवस्थान करते हैं।) इस जल का वाचक है 'ज'। 'र' वर्ण गुप्त है। नाद है अर्धचन्द्र, जो कि वर्णों के शिरोदेश पर रहता है। जब इस अर्धचन्द्र पर बिन्दु

आसीन होता है तब हो जाता है चन्द्रविन्दु। वामनेत्र = ई। ईकार युक्त 'क' जब नाद एवं विन्दु से युक्त होता है तब हो जाता है—क्रीँ। अथवा ब्रह्मा = क। ब्रह्मा का आसन = र (रक्तपद्म)। इसके साथ ई जोड़ने से क्रीँ बीज का उद्धार होता है। श्री शिव देवी से कहते हैं—हे देवी ! यह मन्त्र है चैतन्य-स्वरूप। यह जड़ नहीं है। यह परमात्मस्वरूप तथा समस्त जगत् का कारण भी है ॥२२॥

एकाक्षरी सिद्धविद्या मन्त्रराज्ञी कुलेश्वरि ॥२३॥
त्रिगुणा च कूर्चयुग्मं लज्जायुग्मं ततः परम् ।
दक्षिणे कालिके चेति सप्तबीजानि योजयेत् ॥२४॥

यही एकाक्षरी मन्त्र "क्रीं" सिद्धविद्या है। अर्थात् काली प्रभृति देवता से अभिन्न है। यह मन्त्रराज्ञी भी है। हे कुलेश्वरी ! पहले जिस एकाक्षरी 'क्रीं' बीज को कहा गया उसका तीन बार उच्चारण करने से 'क्रीं क्रीं क्रीं' हो जाता है। तदनन्तर दो बार कूर्चबीज स्थापित करे अर्थात् 'हुं हुं'। तदनन्तर दो बार लज्जाबीज ह्रीं को स्थापित करे अर्थात् 'ह्रीं ह्रीं'। इसके पश्चात् 'दक्षिणे कालिके' कहे। 'दक्षिणे कालिके' के अनन्तर 'क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं' बीज को योजित करे ॥२३-२४॥

अन्ते वह्निवधूं दद्याद्विद्याराज्ञी प्रकीर्त्तिता ।
सर्वमन्त्रमयी विद्या सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ॥२५॥

अन्त में वह्निवधु (स्वाहा) को स्थापित करे। अब सम्पूर्ण मन्त्र इस प्रकार होगा—

"क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं स्वाहा"। यह बाईस अक्षर का मन्त्र पूर्वोक्त 'क्रीं' रूपी एकाक्षरी मन्त्र से अलग है। इसे समस्त विद्याओं से श्रेष्ठ विद्याराज्ञी कहते हैं। यह विद्या अथवा मन्त्र सर्वमन्त्रमयी स्वरूप है। यह है सृष्टि, स्थिति तथा संहार कारिणी कालिका से अभिन्न ॥ २५ ॥

अपि चेत् त्वत्समा नारी मत्समः पुरुषोऽस्ति चेत् ।
अनिरुद्धसरस्वत्याः समो मन्त्रोऽस्ति वै तदा ॥२६॥

हे देवी ! यदि तुम्हारे समान नारी तथा मेरे समान पुरुष है, तब उस स्थित में अनिरुद्धसरस्वती के समान यह मन्त्र भी है अर्थात् न तो तुम्हारे समान नारी है और न मेरे समान पुरुष तथा इसकी तुलना पें कोई मन्त्र नहीं है ॥ २६ ॥

(दक्षिणाकालिकायाः माहात्म्यं मन्त्रश्च)

ब्रह्मा रुद्रश्च विष्णुश्च सर्वे देवा उपासकाः ।
वेदागमपुराणेषु वन्दिता कालिका शुभा ।
कालिका कामपीठेषु सर्वकामप्रदायिनी ॥२७॥

(दक्षिणाकालिका का माहात्म्य एवं मन्त्र)

ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु प्रभृति समस्त देवता कालिका के उपासक हैं । वेद, तन्त्र तथा पुराणों में कल्याणदायिनी कालिका की वन्दना की गयी है । कामपीठ (कामाख्या) आदि पीठों में (अथवा शरीरस्थ कामपीठ में) वन्दिता कालिका समस्त कामनाओं को पूर्ण कर देती हैं ॥ २७ ॥

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले ये केचित् सन्ति भैरवाः ।
ते सर्वे कालिकापुत्रास्ते मुक्ता नात्र संशयः ॥२८॥

अष्ट भैरवों के अतिरिक्त भी अनेक भैरवों की स्थिति है । स्वर्ग, मृत्युलोक तथा पाताल में जितने भी भैरवों की स्थिति है, वे सभी देवी कालिका के पुत्र हैं । वे सभी मुक्त हैं, यह निःसंदिग्ध है ॥ २८ ॥

सङ्केतमार्गाद्देवेशि नाभिषेकं गुरुक्रमात् ।
पूजाकाले विशेषेण तं त्यजेदन्त्यजं यथा ॥२९॥

हे देवेश्वरी ! संकेतमार्ग (ग्रन्थ आदि) से अभिषेक नहीं करना चाहिये । प्रत्युत गुरुक्रमानुसार, गुरु से दीक्षा-उपदेश प्राप्त करके तब अभिषेक करना चाहिये । जैसे पूजनकाल में चाण्डालादि का त्याग कर दिया जाता है, उसी प्रकार पूजनकाल में पुस्तक आदि संकेतमार्ग में वर्णित रीति का त्याग करे । (केवल गुरु द्वारा प्राप्त विधि का अनुसरण करे) ॥२९॥

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्त उष्णिक् छन्दः प्रकीर्त्तितम् ।
देवता दक्षिणाकाली अनिरुद्धसरस्वती ॥३०॥

अब ऋष्यादि न्यास कहा जाता है । कालिकामन्त्र के ऋषि भैरव हैं । छन्दः उष्णिक् है । देवता हैं दक्षिणाकाली अनिरुद्धसरस्वती । (अनिरुद्ध-सरस्बती = जिनमें कहीं भी अवरोध, रोध; संकोच; आबद्धता आदि नहीं है) ॥ ३० ॥

ह्लीं बीजं हुं शक्तिश्च क्रीञ्चैव कीलकं स्मृतम् ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥३१॥

इसका बीज है ह्लीं, शक्ति है हुं, कीलक है क्रीं । इसका प्रयोग (विनियोग) धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष हेतु होता है ॥ ३१ ॥

न्यासजालं पुरा प्रोक्तं नानातन्त्रेषु पार्वति ।
न्यासजालयुतो मन्त्री वीरभावेन पूजयेत् ॥३२॥

हे पार्वती ! नाना शास्त्रों में मैंने पहले ही न्यास का उपदेश दे दिया है । न्यास का अनुष्ठान करके मन्त्रदीक्षाप्राप्त साधक को वीरभाव से पूजन करना चाहिये ॥ ३२ ॥

(दक्षिणकालिकायाः ध्यानं मानसपूजा च)

त्रिपञ्चारे महापीठे योनिपीठं प्रपूजयेत् ।
ध्यायेत् कालीं करालास्या पीनोन्नतपयोधराम् ॥३३॥
महामेघप्रभां श्यामां घोररावां चतुर्भुजाम् ।
सद्यश्छिन्नशिरःखड्गवामोद्र्ध्वाधःकराम्बुजाम् ॥३४॥
अभयं वरदं चैव दक्षिणोद्र्ध्वाधःपाणिकाम् ।
पञ्चाशद्वर्णमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम् ॥३५॥
सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम् ।
शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम् ॥३६॥
शवानां करसङ्घातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम् ।
दिगम्बरीं मुक्तकेशीं चन्द्रार्द्धकृतशेखराम् ॥३७॥

शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम् ।
महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम् ।।३८।।
मदिराघूर्णनयनां स्मेराननसरोरुहाम् ।
अट्टहासां महारौद्रीं सर्वदानन्दकारिणीम् ।
एवं सञ्चिन्तयेत् कालीं श्मशानालयवासिनीम् ।।३९।।

(दक्षिणकालिका का ध्यान और मानस पूजा)

कालिका के ही यन्त्रात्मक रूप १५ कोण युक्त विशिष्ट महापीठ (योनिपीठ) पर योनिपीठात्मक देवी का पूजन करे। देवी ही जगत् की योनि हैं। (योनि = कारण)। अतः मूलाधार में योनिपीठात्मक कालिका की पूजन विधि कही जा रही है।

कराल मुखयुक्त उन्नत तथा स्थूलगुण युक्त महामेघ के समान प्रभायुक्ता, श्यामवर्णा, भयंकर शब्दकारिणी, चतुर्बाहुसमन्विता, बायीं ओर ऊर्ध्व उठे हाथ में खड्ग तथा नीचे झुके हुये हाथ में तत्काल कटे मस्तक को धारण करने वाली, दायीं ओर ऊर्ध्व में उठे हाथ में अभयमुद्रा तथा नीचे झुके हाथ में वरमुद्रा धारण करते हुये वरदायिनि एवं अभयकारिणी, अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह क्ष रूपी ५० वर्णरूपा, ५० मुण्डों की माला से गिर रहे रक्त द्वारा चर्चिता (युक्ता), दोनों ओठों के किनारों से गिर रही रक्तधारा से अतिशय दीप्यमान मुखकान्तियुता, चारों ओर घोर शब्द करने वाली, शृगालियों से घिरी हुई, शव के कटे हाथों द्वारा बनी करधनी से सुशोभिता, हास्य भरे मुख वाली, दिक्वस्त्रों वाली (दिगम्बर), खुले केशों वाली, मस्तक पर अर्धचन्द्र से सुशोभिता, शवरूप में लेटे हुये महादेव के वक्षःस्थल पर खड़ी महाकाल के साथ विपरीत रति-युता, मदिरापान के कारण घूर्णित नयनों वाली (अर्थात् परमानन्दरूप कारणामृतपान से आनन्दित), तनिक हास्ययुत (मुस्कराते हुये) मुखपद्म

वाली, साथ ही अट्टहास युक्त होने पर भी अतिशय रौद्रभाव प्रदर्शित करने वाली, सर्वदा आनन्दकारिणी, श्मशानरूपी घर में रहने वाली कालिका का ध्यान करना चाहिये ।। ३३-३९ ।।

एवं ध्यात्वा यजेद्वीरो निशायां कुलमन्दिरे ।
मानसं पूजनं कृत्वा कुलपुष्पं समाहरेत् ।।४०।।

इस प्रकार ध्यान करके वीरभाव युक्त साधक रात्रि में दशमहाविद्या के मन्दिर में मानसपूजन करके कुलपुष्प (अन्य व्यक्ति की कन्या का पुष्प रजरक्त) संग्रह करे ।। ४० ।।

मानसं पूजनं नैव गच्छेत्तु पितृकानने ।
स पापिष्ठो यजेन्नैव कालीं कलुषहारिणीम् ।। ४१ ।।

श्मशान में मानस पूजन करना उचित नहीं है। जो वहाँ पर मानस पूजन करता है, वह पापिष्ठ व्यक्ति कलुषहारिणी काली की पूजा का अधिकारी नहीं है ।। ४१ ।।

उच्चैर्नोच्चरयेन्मन्त्रं मनसा च स्मरेन्मनुम् ।
तत्र चावाहनं नेष्टं कामाख्यायां कुलेश्वरि ।। ४२ ।।

मन्त्र का उच्चारण उच्च स्वर से करना उचित नहीं है। उसका उच्चारण उपांशुरूप से (मन ही मन) करना चाहिये। यह मन्त्र उच्चारणार्थ न होकर मनन हेतु है। हे कुलेश्वरी ! कामाख्या पीठ में कालिका प्रभृति का आवाहन करना उचित नहीं है ।। ४२ ।।

आराध्यं मनसा भक्त्या बाह्यपूजामथाचरेत् ।
आत्मशुद्धिं द्रव्यशुद्धिं कृत्वा पात्राणि विन्यसेत् ।। ४३ ।।

मानसिक आराधना के उपरान्त ही बाह्यपूजा करनी चाहिये। (इसका कारण यह है कि मानसिक रूप से की गई आराधना से समावेश की प्राप्ति होती है। समावेश की स्थिति आराध्य से ऐक्य स्थापना कर देती है। तद-

नन्तर ही बाह्यपूजन फलकारक होता है। अन्तःचैतन्य हुये बिना बाह्यचैतन्य हो सकना दुष्कर है।)

आत्मशुद्धि (सम्यक् भूतशुद्धि से ही आत्मशुद्धि साधित होती है। भूतशुद्धि के अनन्तर प्राणशुद्धि किये बिना यथार्थ भूतशुद्धि नहीं होती), द्रव्यशुद्धि (मन्त्रोपचार से, पूजाद्रव्य पर जल छिड़कने से द्रव्यशुद्धि साधित होती है) करने के अनन्तर अर्घ्यपात्र, बलिपात्र, श्रीपात्र आदि को यथास्थान रखना चाहिये ॥ ४३ ॥

अर्घ्यपात्रादिकं तत्र विन्यसेद्विधिपूर्वकम् ।
पीठपूजां विधायाथ पूजयेत्तत्र देवताम् ॥ ४४ ॥

पूजास्थान पर विधानपूर्वक अर्घ्यपात्रादि को स्थापित करे। तदनन्तर पीठपूजा करने के पश्चात् देवीपूजा करे ॥ ४४ ॥

चिन्तयेत् परया भक्त्या विधिदृष्टेन कर्मणा ।
आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ॥ ४५ ॥

शास्त्रविधि में उल्लिखित कर्म से भक्तिपूर्वक देवी का चिन्तन करके उन्हें आसन-स्वागत-पाद्य-अर्घ्य आचमनीय जल प्रदान करना चाहिये ॥ ४५ ॥

स्नानं वस्त्रोपवीतञ्च भूषणानि च सर्वशः ।
गन्धं पुष्पं धूपदीपौ मधुपर्कं ततः परम् ॥ ४६ ॥
मन्त्रमुच्चार्य दातव्यं तर्पणञ्च ततः परम् ।
माल्यानुलेपनञ्चैव पञ्च पुष्पाञ्जलींस्ततः ॥ ४७ ॥

तदनन्तर स्नानजल, वस्त्र, यज्ञोपवीत, समस्त अलंकार, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, मधुपर्क को मन्त्र द्वारा निवेदित करना चाहिये। तत्पश्चात् तर्पण का विधान है। इसके अनन्तर माला तथा अनुलेपन के पश्चात् पुष्पांजलि देना चाहिये ॥४६॥ ४७॥

पुनः प्रपूजयेद्देवीं महाकालेन लालिताम् ।
षोडशोपचारयुक्ता ह्यष्टौ पूजा प्रकीर्तिता ॥ ४८ ॥

पुनः अब महाकाल द्वारा लालित इन देवी का पूजन करे। षोडशोपचार युक्त आठ प्रकार की पूजा (साधक-समाज हेतु) कही गयी है ॥ ४८ ॥

अष्टाभिः शक्तिभिश्चापि लोकपालैश्च सम्मतः ।
पीठमन्त्रक्रमाद्यागः स मार्गः परमः स्मृतः ॥ ४९ ॥

आठ शक्तियों द्वारा तथा लोकपालों द्वारा सम्मत पीठमन्त्र के उच्चारण क्रम से जो पूजा की जाती है, वही परम उपाय के रूप में शास्त्र में वर्णित है ॥ ४९ ॥

(पूजाविधिः)

पीठेनैव समस्तेन बहिरावरणं विना ।
मन्त्रपूर्वकृतो यागो नित्ययागः समध्यमः ॥ ५० ॥

(पूजन की विधि)

बहिरावरण (बाहरी आवरण देवताओं) के बिना समस्त पीठदेवताओं के मन्त्र द्वारा जो याग (पूजा) होता है, उसे नित्ययाग कहते हैं। यह पूजा-विधि मध्यम पूजन है ॥ ५० ॥

केवलं पुष्पयागस्तु कनिष्ठपूजनं भवेत् ॥ ५१ ॥

केवल पुष्पों द्वारा जो याग (पूजन) है, वह निकृष्ट पूजन है ॥ ५१ ॥

तत आज्ञां समादायावरणञ्च प्रपूजयेत् ।
कमलां मुकुटं मूर्ध्नि कर्णे च कुण्डले ततः ॥ ५२ ॥

तदनन्तर देवी की आज्ञा लेकर आवरण (देवता) पूजन करे। प्रथमतः कमला देवी का पूजन करके उनके मस्तकस्थ मुकुट तथा कर्णस्थ कुण्डलों का पूजन करना चाहिये ॥ ५२ ॥

गुरुपङ्क्ति ततो देवि महाकालं ततः परम् ।
धूम्रवर्णं महाकालं जराभारान्वितं प्रिये ॥ ५३ ॥

त्रिनेत्रं शवरूपञ्च शक्तियुक्तं निरामयम् ।
दिगम्बरं घोररूपं नीलाञ्जनसमप्रभम् ॥ ५४ ॥
निर्गुणञ्च गुणाधारं कालीस्थानं पुनः पुनः ॥ ५५ ॥

हे प्रिये ! हे देवी ! तत्पश्चात् गुरुपंक्ति का पूजन करना चाहिये । तदनन्तर धूम्र के समान वर्ण वाले, जटासमूहयुक्त, त्रिनेत्र, शवस्वरूप, शक्तियुक्त, रोगादिदोषरहित, दिगम्बर, घोराकार, कृष्ण अंजन के समान प्रभायुक्त, निर्गुण होने पर भी गुणों के आश्रय काली के अधिष्ठानस्वरूप महाकाल का पुनः-पुनः पूजन करे ॥ ५३-५५ ॥

दलाष्टे पूजयेद्देवि पूर्वादिक्रमयोगतः ।
ब्राह्मी नारायणी चैव कौमारी च महेश्वरि ।
अपराजिता च चामुण्डा वाराही नारसिंहिका ॥ ५७ ॥

हे देवि ! अष्टदलकमल (जो कि काली का आसन है) के आठ दलों में पूर्व दिशा से प्रारंभ करके ब्राह्मी-नारायणी-कौमारी-माहेश्वरी-अपराजिता चामुण्डा-वाराही एवं नारसिंही का पूजन करना चाहिये ॥ ५७ ॥

चतुर्द्वारे यजेद्देवि असिताङ्गादिभैरवान् ।
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधो भीषण एव च ॥ ५८ ॥
उन्मत्तश्च कपाली च संहारक इति क्रमात् ।
पूर्वादिक्रमतो देवि द्वारि द्वारि द्वयं द्वयम् ॥ ५९ ॥

हे देवी ! इस (यन्त्र के) के चारों द्वार पर (चारों दिशा के द्वार पर पूर्वादिक्रम से २-२ भैरवों का पूजन करे :—

पूर्वद्वार—असिताङ्ग एवं रुरु भैरव,
दक्षिणद्वार—चण्ड एवं क्रोध भैरव,
पश्चिमद्वार— भीषण एवं उन्मत्त भैरव,
उत्तरद्वार—कपाली एवं संहार भैरव ॥ ५८-५९ ॥

इन्द्रादिदशदिक्पालान् दश दिक्षु प्रपूजयेत् ।
खड्गं मुण्डं यजेद्वामे हस्ते च कुलसुन्दरि ॥ ६० ॥
पूजयेद्दक्षिणे हस्ते अभयञ्च वरस्तथा ।
पुनश्च पूजयेद्देवीं सायुधाञ्च सवाहनाम् ॥६१॥

हे कुलसुन्दरी ! दशों दिशाओं में क्रमशः इन्द्रादि दस दिक्पालों का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् काली देवी के दोनों बायें हाथ में खड्ग एवं (नीले वाले में) मुण्ड का और दोनों दाहिने हाथ में अभय मुद्रा (नीचे वाले में), वर मुद्रा का पूजन करे। पुनः आयुध-वाहन के साथ देवी का पूजन करना चाहिये ॥६०-६१॥

कुल्लूकां मूर्ध्नि संजप्य हृदि सेतुं विचिन्तयेत् ।
महासेतुं कण्ठदेशे नाभौ योनिं विचिन्तयेत् ॥६२॥
सेतुं तु प्रणवं देवि हृदिस्थं तं प्रपूजयेत् ।
निजबीजं महासेतुं कण्ठदेशे विचिन्तयेत् ॥६३॥

जपरहस्य का ज्ञान साधक के लिये आवश्यक है। जपरहस्य अनगिनत है, तथापि उनमें २० अतिप्रसिद्ध हैं।

आचमन, कामिनीध्यान, मातृकान्यासादि, मन्त्रशिखा, मन्त्रचैतन्य, मन्त्रार्थभावना, निद्राभङ्ग, कुल्लूका, महासेतु, सेतु, मुखशोधन, करशोधन, योनिमुद्रा, मन्त्रशुद्धि, प्राणयोग, दीपनी, अशौचभङ्ग, उत्कीलन, दृष्टिसेतु, कामकलाध्यान। इन सब को करने के अनन्तर जप करने के उपरान्त कुल्लूका—महासेतु—सेतु—अशौचभङ्ग करने के उपरान्त जपसमर्पण करना चाहिये। इस निरुत्तर तन्त्र में कुल्लूका—सेतु—महासेतु—योनिमुद्रा—सेतु—बीज—महासेतु आदि का वर्णन है।

हे देवी ! मस्तक में कुल्लूका स्थापन करके हृदय में सेतु का चिन्तन करना चाहिये। कण्ठ में महासेतु तथा नाभि में योनि का चिन्तन करना चाहिये। ॐ रूप सेतु का पूजन हृदय में होता है। अपने बीजमन्त्र रूप महासेतु का चिन्तन कण्ठदेश में करना चाहिये ॥६२-६३॥

(कुल्लूकादिरहस्यम्)

(कुल्लूका प्रभृति का रहस्य)

सबिन्दुमातृकायुक्ता नाभिमध्ये विचिन्तयेत् ।
कालीकूर्चं वधूर्माया फट्कारान्तं सुरेश्वरि ।
पञ्चाक्षरी कालिकायाः कुल्लूकां परिचिन्तयेत् ॥६४॥

गुरु से प्राप्त अपने बीजमन्त्र के पूर्व में तथा अन्त में विन्दुयुक्त मातृकावर्ण लगाकर उसका नाभि में चिन्तन करना चाहिये। उदाहरणार्थ यदि बीजमन्त्र है 'ह्रीं' तब "अं ह्रीं अं" इस प्रकार से मन्त्र को पुटित करे। अथवा 'आं ह्रीं आं' इस प्रकार से। काली का कुल्लूका है—काली (क्रीं) कूर्च (हुं) वधु (स्त्रीं) माया (ह्रीं) तथा अन्त में फट् अर्थात् कालिका का कुल्लूका हुआ—क्रीं हुं स्त्रीं ह्रीं फट्, इसका चिन्तन करे ॥६४॥

ताराया: कुल्लूका देवि महानीलसरस्वती ।
अन्यासाञ्च वधूबीजं कुल्लूका परिकथ्यते ॥६५॥

तारा का कुल्लूका है महानीलसरस्वती। अन्य महाविद्याओं अर्थात् षोडशी आदि का कुल्लूका है "स्त्रीं" ॥६५॥

कालीकुलप्रवृत्तानां पूजायामेवमाचरेत् ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा पुनः पूजा प्रकल्पयेत् ॥६६॥

पुनः प्रपूजयेद्देवीं महाकालेन लालिताम् ।
ततस्तु कवचं देवि स्तवञ्च प्रपठेत्ततः ॥६७॥

॥इति श्रीनिरुत्तरतन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे द्वितीयः पटलः ॥

ग्रंथ में कालीकुल एवं श्रीकुल का वर्णन है। यहाँ जिस पूजन का कथन है, वह है कालीकुल पूजन। इस पूजा में निरत साधकों के लिये यही आचरण विहित है। इस प्रकार कुल्लूका-सेतु-महासेतु इत्यादि करने के अनन्तर १०८ बार काली का मन्त्रजप करके पुनः महाकाल द्वारा लालित देवी कालिका का पूजन करे। हे देवी! तदनन्तर कवच एवं स्तव पाठ करना चाहिये ॥६६-६७॥

॥ द्वितीय पटल समाप्त ॥

तृतीयः पटलः

श्रीदेव्युवाच

भगवन् सर्वदेवेश सर्वभूतनमस्कृत ।
सर्वं मे कथितं देव कवचं न प्रकाशितम् ।
कथयस्व सुरश्रेष्ठ यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ॥१॥

श्री देवी कहती हैं—हे समस्त देवताओं के ईश्वर! समस्त प्राणियों द्वारा नमस्कारयोग्य! भगवन्! हे देव! आपने मुझसे सब कुछ तो कह दिया, परन्तु अब तक कवच को प्रकाशित नहीं किया। हे देवश्रेष्ठ! यदि आप मुझसे स्नेह करते हैं, तब मुझे कवच का उपदेश दीजिये ॥१॥

(कालीकवचम्)

श्रीशिव उवाच

सिद्धकाली शिरः पातु ललाटं पातु दक्षिणा ।
काली मुखं सदा पातु कपाली पातु चक्षुषि ॥१॥

कुल्ला गण्डौ सदा पातु वदनं कुरुकुल्लिका ।
विरोधिन्यधरं पातु चिबुकं विप्रचित्तिका ॥३॥

(काली का कवच)

श्री शिव कहते हैं—सिद्धकाली मस्तक की रक्षा करें। दक्षिणाकाली ललाट की रक्षा करें। कालीदेवी सर्वदा मुख की एवं कपाली दोनों नेत्रों की रक्षा करें।

कुल्ला दोनों गालों की सर्वदा रक्षा करें। कुरुकुल्ला मुख की रक्षा करें। विरोधिनी अधर की, विप्रचित्ता अधर के निम्न भाग की रक्षा करें ॥२-३॥

उग्रा कर्णौ सदा पातु नासामुग्रप्रभा तथा ।
कण्ठं दीप्ता सदा पातु ग्रीवां नीला प्रभावतु ॥४॥

उग्रादेवी सदैव कर्णद्वय की एवं उग्रप्रभा देवी नासिका की रक्षा करें। कण्ठों की रक्षा सदा दीप्तादेवी करें और ग्रीवा की रक्षा नीला करें जिनका अन्य नाम प्रभा भी है ॥४॥

वक्षःस्थलं पातु घना पृष्ठं मात्रा सदावतु ।
मुद्रा नाभिं सदा पातु मिता लिङ्गं सदावतु ॥५॥

घना वक्षःस्थल की तथा मात्रादेवी सदैव पृष्ठ की (पीठ की) रक्षा करें। नाभि की रक्षा सदैव मुद्रा करें और मिता देवी सदैव लिङ्ग की रक्षा करें ॥५॥

रतिप्रिया लिङ्गमूलं गुह्यं शिवप्रियावतु ।
अरुणा तालुमूलं हि रसनां तरुणा तथा ॥६॥

रतिप्रिया लिङ्गमूल की तथा शिवप्रिया गुह्य की रक्षा करें। रसना की रक्षा तरुणा तथा तालुमूल की रक्षा अरुणा करें ॥६॥

महाकालप्रिया जानु विकटा पातु जङ्घयोः ।
श्मशानवासिनी भार्यां पुत्रं पातु दिगम्बरि ॥७॥

महाकालप्रिया जानु की, विकटा जंघा की रक्षा करें। भार्या की रक्षा श्मशानवासिनी तथा पुत्र की रक्षा दिगम्बरी करें ॥७॥

भवनं मत्तहासा च मातरं मे सुरेश्वरि ।
राजस्थानं घोररावा सततं पातु कालिका ॥८॥

मत्तहासा घर की रक्षा करें, सुरेश्वरी हमारी माँ की रक्षा करें। घोररावा कालिका सदैव राज्यस्थान की रक्षा करें ॥८॥

धर्मं पातु घोररूपा अधर्मं मुण्डमालिनि ।
करकाञ्चीं पातु नित्यं कालिका सर्वदावतु ॥९॥

घोररूपा धर्म की रक्षा करें। मुण्डमालिनी अधर्म से रक्षा करें। कालिका सर्वदा हथेली की रक्षा करें ॥९॥

कामबीजत्रयं पातु नाभितः पादमेव च ।
कूर्चबीजयुगं पातु सदा मे नाभिदेशतः ॥१०॥

'क्लीं-क्लीं-क्लीं' नाभि से पैर तक की रक्षा करें। 'हूँ-हूँ' हमारे नाभि-प्रदेश का रक्षण करें ॥१०॥

शक्तिबीजद्वयं पातु ब्रह्मरन्ध्राननं पुनः ।
कामबीजद्वयं पातु पूर्वस्यां दिशि सर्वदा ॥११॥

'ह्रीं-ह्रीं' हमारे ब्रह्मरन्ध्र तथा मुख की रक्षा करें। 'क्लीं-क्लीं' पूर्व दिशा की रक्षा करें ॥११॥

कूर्चबीजयुगं पातु दक्षिणस्यां सदावतु ।
शक्तिबीजयुगं पातु प्रतीच्यां सर्वदा शुभा ॥१२॥

'हुं-हुं' सर्वदा दक्षिण दिशा की रक्षा करें। 'ह्रीं-ह्रीं' मंगलमय शुभ होकर सदा पश्चिम दिशा की रक्षा करें ॥१२॥

वह्निजाया चोत्तरस्यां दिशि पातु च मां सदा ।
विद्याराज्ञी च सर्वासामनिरुद्धसरस्वती ॥१३॥

उत्तर दिशा में वह्निजाया सदा हमारी रक्षा करें। विद्या की राज्ञी अनिरुद्धसरस्वती सभी दिशाओं में रक्षा करें ॥१३॥

कालिकाकवचं दिव्यं यः पठेद् यत्नतः सुधीः ।
भूतप्रेतपिशाचाद्याः कूष्माण्डा राक्षसा ग्रहाः ।
तस्य दूरात् पलायन्ते सत्यं सत्यं न संशयः ॥१४॥

जो सुधी व्यक्ति यत्न से इस दिव्य कालिका-कवच का पाठ करता है, उसके पास से भूत-प्रेत-पिशाच प्रभृति अपदेवता, कूष्माण्ड-राक्षस प्रभृति भाग जाते हैं। यह सत्य है, निःसंदिग्ध है ॥१४॥

देव्युवाच—

शङ्करो यां स्तुतिं कृत्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
तां मे कथय देवेश यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ॥१५॥

देवी कहती हैं—हे देवाधिदेव शंकर ! जिनकी स्तुति करके और जो स्तुति करके सभी सिद्धियों के ईश्वर हो गये हैं, उस देवीस्तुति का उपदेश करिये, यदि आपको मेरे ऊपर स्नेह है, तब देवी से सम्बन्धित स्तुति का वर्णन करें ॥१५॥

(कालिकास्तुतिः)

शिव उवाच -

हुं हुं कारे शवारूढे नीलनीरजलोचने ।
त्रैलोक्यैकमुखे दिव्ये कालिकायै नमोऽस्तु ते ॥१६॥

(कालिका की स्तुति)

श्री शिव कहते हैं—जो हुं हुं शब्द करने वाली, शवारूढा हैं, नीलकमल के समान जिनके नेत्र हैं, त्रिभुवन जिनका एकमुख है, उन दिव्य कालिका को नमस्कार ॥१६॥

प्रत्यालीढपदे घोरे मुण्डमालाप्रलम्बिते ।
खर्वे लम्बोदरे भीमे कालीकायै नमोऽस्तु ते ॥१७॥

जिनका वाम पद आगे बढ़ा हुआ है, दाहिना पद पीछे है, जो घोरा हैं, मुण्डमाल जिनके गले में सुशोभित है, जो खर्वा, लम्बोदरी, भीमा हैं, उन कालिका को नमस्कार ॥१७॥

नवयौवनसम्पन्ने गजकुम्भोपमस्तनि ।
वागीश्वरि शिवे शान्ते कालिकायै नमोऽस्तु ते ॥१८॥

नवयौवन से सम्पन्न, हाथी के मस्तक जैसे उन्नत स्तनों वाली, वाक् की ईश्वरी, शिवा, शान्ता कालिका को नमस्कार ॥१८॥

ललज्जिह्वे हरालोके नेत्रत्रयविभूषिते ।
घोराहास्योत्करे देवि कालिकायै नमोऽस्तु ते ॥१९॥

जिनकी जिह्वा बाहर निकली हुई है, जो महादेव के लिये आलोकस्वरूपिणी हैं, त्रिनेत्रों वाली, घोर हास्य करने वाली कालिका देवी को नमस्कार ॥१९॥

व्याघ्रचर्माम्बरधरे खड्गकर्त्रीकरे धरे ।
कपालेन्दीवरे वामे कालिकायै नमोऽस्तु ते ॥२०॥

व्याघ्रचर्म को वस्त्ररूप में धारण करने वाली, खड्ग, कैंची धारण करने वाली, बायें हाथ में कपाल एवं पद्मधारण करने वाली कालिके ! तुम्हें नमस्कार ॥२०॥

नीलोत्पलजटाभारे सिन्दूरेन्दुमुखोदये ।
स्फुरद्वक्त्रोष्ठदशने कालिकायै नमोऽस्तु ते ॥२१॥

नीलपद्म के समान जटा के भार से युक्त, सिन्दूर वर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखश्री वाली, जिनके मुख, ओष्ठ एवं दाँत स्फुरित हो रहे हैं, वैसी कालिके ! तुम्हें नमस्कार ॥२१।

प्रलयानलधूम्राभे चन्द्रसूर्याग्निलोचने ।
शैलावासे शुभे मातः कालिकायै नमोऽस्तु ते ॥२२॥

प्रलयाग्नि की धूँआ जैसी कान्तियुक्ता, चन्द्र, सूर्य एवं अग्नि सदृश नेत्रत्रययुक्ता, पर्वतवासिनी, माता, शुभे कालिके ! तुम्हें नमस्कार ॥२२॥

ब्रह्मशम्भुजलौघे च शवमध्यप्रसंस्थिते ।
प्रेतकोटिसमायुक्ते कालिकायै नमोऽस्तु ते ॥२३॥

ब्रह्मा एवं शंभु जिनके जलप्रवाह के समान हैं, जो शवों के मध्य में खड़ी हैं, जो करोड़ों प्रेतों से समन्विता हैं, उन्हें नमस्कार ॥ २४ ॥

इत्येतं कालिकास्तोत्रं यः पठेद् भक्तिसंयुतः ।
कृतकृत्यो भवेन्मन्त्री नात्र कार्या विचारणा ॥ २५ ॥

। इति श्रीनिरुत्तरतन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे तृतीयः पटलः ।

जो भक्तियुक्त होकर इस कालिकास्तोत्र का पाठ करता है, वह कालिकामंत्र साधन द्वारा कृतकृत्य हो जाता है । इस सम्बन्ध में अधिक विचार करना व्यर्थ है ॥ २५ ॥

तृतीय पटल समाप्त

चतुर्थः पटलः

श्रीदेव्युवाच

पूजा च कथिता देव पुरश्चर्या च कीदृशी ।
कथयस्व सुरश्रेष्ठ यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ॥ १ ॥

श्री देवी कहती हैं— हे देव ! आपने पूजा के सम्बन्ध में कहा । हे देव-श्रेष्ठ ! यदि आपका स्नेह मेरे ऊपर हैं, तब यह बतलाने की कृपा करें कि पुरश्चरण किस प्रकार का होता है ? ॥ १ ॥

श्रीशिव उवाच

उत्तमा मानसी पूजा बाह्यपूजा कनीयसी ।
पूजया लभते पूजां जपात् सिद्धिर्न संशयः ॥ २ ॥

श्री शिव कहते हैं—मानस पूजा उत्तमा है । उसकी अपेक्षा बाह्यपूजा निकृष्ट है । पूजा द्वारा व्यक्ति अन्य की पूजा का लाभ करता है (पूजाधिकार मिलता है), परन्तु जप से, निःसंदिग्ध रूप से सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ २ ॥

होमेन सर्वसिद्धिः स्यात्तस्मात् त्रितयमाचरेत् ।
वीराणां मानसी पूजा दिव्यानाञ्च कुलेश्वरि ॥ ३ ॥

यद्यपि होम से सर्वसिद्धि प्राप्त होती है, तथापि त्रितय (पूजा-जप-होम) का अनुष्ठान करना चाहिये । हे कुलेश्वरी ! वीर एवं दिव्य भाव के साधकों के लिए मानस पूजा विहित है ॥ ३ ॥

आसनानि च नाडीनां संकेतं शृणु साम्प्रतम् ।
एतज्ज्ञानं विना देवि पुरश्चर्या न जायते ॥ ४ ॥

अब आसन एवं नाड़ी के संकेत को सुनों । इनके ज्ञान के अभाव में पुरश्चरण नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणम् ।
ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि भवन्ति षट् ॥ ५ ॥

आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि को योग का षडङ्ग कहा जाता है ॥ ५ ॥

आसनानि कुलेशानि यावन्तो जीवजन्तवः ।
चतुरशीतिलक्षाणां जन्तवः समुदाहृताः ॥ ६ ॥

हे कुलेश्वरी ! जितने जीव-जन्तु हैं, उतने ही आसन भी हैं । जगत् में ८४ लक्ष जीव-जन्तु हैं, उतने ही आसन भी हैं ॥ ६ ॥

आसनेभ्यः समस्तेभ्यः साम्प्रतं द्वयमुच्यते ।
एकं सिद्धासनं नाम द्वितीय कमलासनम् ॥ ७ ॥

समस्त आसनों में सम्प्रति २ आसन उत्तम कहे जा रहे हैं (अर्थात् ये दो मुख्य हैं), प्रथम है - सिद्धासन, द्वितीय को कमलासन कहा गया है ॥ ७ ॥

(नाडीवर्णनम्)

नाडीनां समूहो देवि व्यक्तश्चास्ति खगाण्डवत् ।
तत्र नाड्यः समुद्भूता सहस्राणां द्विसप्ततिः ॥ ८ ॥

(नाडियों का वर्णन)

हे देवी ! जैसे पक्षी के अण्डे के फूटने से पक्षी व्यक्त होता है, उसी प्रकार नाड़ीसमूह अव्यक्त से ही व्यक्त होता है । प्रकट नाड़ियाँ ७२ हजार हैं । (यद्यपि उपनिषद् में ७२ करोड़ ७२ लाख १० हजार २०१ नाड़ियों की चर्चा है, जिनमें अव्यक्त नाड़ियाँ भी हैं) ॥ ८ ॥

प्रधानं प्राणवाहिन्यः स्वयं यत्र दश स्मृताः ।
इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना चैव कीर्त्तिताः ॥ ९ ॥

इन ७२००० में से प्राणवाही प्रधान नाड़ी १० हैं, ऐसा शास्त्र कहते हैं । जैसे—इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना—॥ ९ ॥

गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी ।
अलम्बुषा कुहुश्चैव शङ्खिनी च दश स्मृताः ॥ १० ॥
एवं नाडीमयं चक्रं विज्ञेयं शक्तिचक्रके ।
इडायाः पिङ्गलायाश्च सुषुम्ना मध्यतस्तथा ॥ ११ ॥

गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहु एवं शंखिनी ।

इस नाड़ीमय चक्र (षट्चक्र) को ज्ञानीजन शक्तिचक्र कहते हैं । इड़ा-पिंगला के मध्य में सुषुम्ना है ॥ ११ ॥

इयञ्च त्रिगुणा ज्ञेया ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका ।
रजोगुणा ध्वजाख्या च चित्रिणी सत्त्वसम्पदा ॥ १२ ॥

तमोगुणा ब्रह्मनाडी कार्यभेदक्रमेण च ।
इडायाः पिङ्गलायाश्च एताः सर्वाः प्रकीर्त्तिताः ॥ १३ ॥

सुषुम्ना त्रिगुणात्मिका है । सुषुम्ना के मध्य में ध्वजा नाड़ी रजोगुणा, चित्रिणी सत्त्वगुणा तथा ब्रह्मनाड़ी तमोगुणा है । कार्यभेद से यह त्रिगुणभेद है । ये सब नाड़ियाँ इड़ा-पिंगला की सम्बन्धिनी हैं ॥ १२-१३ ॥

एताश्च प्राणवाहिन्यः सोमसूर्याग्निदेवताः ।
इडा नाडी स्थिता वामे दक्षिणे चैव पिङ्गला ।
सुषुम्ना च तयोर्मध्ये चन्द्रसूर्यप्रभेदतः ॥ १४ ॥

ऊपर जिन दस नाड़ियों के सम्बन्ध में कहा गया है, वे सभी प्राणवहा हैं । इनके देवता हैं—चन्द्र-सूर्य-अग्नि । वाम भाग में इड़ा नाड़ी अवस्थित है । दाहिनी ओर पिंगला की अवस्थिति है । इन दोनों के मध्य में सुषुम्ना की सत्ता है । इड़ा को चन्द्र तथा पिंगला को सूर्य नाड़ी कहते हैं । सुषुम्ना है अग्नि-नाड़ी । वास्तव में ये ही क्रमशः चन्द्र (इड़ा), सूर्य (पिंगला) तथा अग्नि (सुषुम्ना) देवता से अधिष्ठित तथा प्राणवहा नाड़ियाँ हैं ॥ १४ ॥

वायवश्चैव विज्ञेया मनश्चन्द्रात्मकं हृदि ।
प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः ॥ १५ ॥

अब वायु के सम्बन्ध में भी जानना चाहिये । मन है चन्द्रात्मक अथवा मन के अधिपति हैं चन्द्र । मन हृदय में रहता है । वायु हैं प्राण-अपान-समान-उदान तथा व्यान ॥१५॥

हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिदेशतः ।
उदानः कण्ठदेशे स्याद्व्यानः सर्वशरीरगः ॥१६॥

प्राण का अवस्थान है हृदय में । अपान गुह्य में अवस्थित रहता है । समान की स्थिति नाभिदेश मे हैं । उदान कण्ठ में तथा व्यान समस्त शरीर में वर्त्तमान रहता है ॥१६॥

नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ।
प्राणाद्याः पञ्च विख्याता नागाद्याः पञ्च वायवः ॥१७॥

इन पंच प्राण के अतिरिक्त नाग—कूर्म, कृकर, कूर्म, देवदत्त तथा धनंजय नामक अन्य पंच वायु भी अवस्थित हैं । फिर भी पंच प्राण अत्यन्त विख्यात हैं ॥१७॥

एते नाडीसमस्तेषु वर्त्तन्ते चान्यसंज्ञकाः ।
गुणबद्धो यथा जीवः प्राणापानेन कर्षति ॥१८॥

ये दश वायु समस्त शरीर में अवस्थान करते हैं, तथापि भिन्न-भिन्न स्थानों में इनके नाम अलग-अलग हो जाते हैं । जैसे बद्ध जीव (पशु) रस्सी खींचने से खिंचता चला आता है, उसी प्रकार जीव भी प्राण-अपान से आकृष्ट होता है ॥१८॥

अपानः कर्षति प्राणं प्राणोऽपानञ्च कर्षति ।
अथ ऊर्ध्वस्थितावेतौ यो जानाति स योगवित् ॥१९॥

अपान वायु प्राण का आकर्षण करता है (अन्यथा प्राणवायु शरीर को ऊर्ध्व में उठाने में ही लगा रहता) । इसी प्रकार प्राण वायु अपान का आकर्षण करता रहता है । अन्यथा अपान शरीर को निम्नतम में ले जाता ।

यह तथ्य जो जानते हैं (जो प्राणापान तत्त्व जानते हैं) वे ही यथार्थ योगवि
हैं ॥१९॥

हंसगतिः प्रकृतिर्ज्ञेया ऊँकारः प्रकृतेर्गुणः ।
हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत् पुनः ।
हंस इति मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ॥२०॥

प्रकृति की गति है हंसगति । ॐ है प्रकृति का गुण अर्थात् यही है जी
एवं परमात्मा का योजक । नासिका से वायु बहिर्गत होते समय 'ह' का शब्
कर होता है और भीतर जाते समय 'स' का । प्रत्येक जीव अनजाने रूप से
इस 'हसः' नामक परम मन्त्र का जप करता रहता है ॥२०॥

(अजपाजपः प्राणायामश्च)

षट्शतानि दिवारात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः ।
एतत् संख्यायतं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ॥२१॥

अजपानाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी ।
अजपा च द्विधा प्रोक्ता व्यक्ता गुप्ता क्रमेण तु ॥२२॥

(अजपाजप एवं प्राणायाम)

जीव दिनरात्रि में २१६०० संख्यक अजपा मन्त्र (हंसः) जपता रहता है
इसे अजपा गायत्री कहते हैं । यह गायत्री योगियों को मुक्ति प्रदान करती है
अजपा भी व्यक्त एवं गुप्त रूप से द्विविध है ॥२१-२२॥

व्यक्ता च द्विविधा प्रोक्ता हृदि स्थाने व्यवस्थिता ।
ठकाराकारगुप्ता च शिवशक्तिः प्रकीर्त्तिता ॥२३॥

व्यक्ता अजपा भी दो प्रकार की है । वह हृदय में स्थित है । सोऽह
तथा हंसः रूप से द्विविध अजपा व्यक्ता है । इस प्रकार 'ठ' एवं 'अ' द्वार
जो गुप्त अजपा कही गयी है, वही शिव एवं शक्ति संज्ञा से भी अभिहि
है ॥२३॥

चन्द्रबीजं ठकारञ्च तं बीजं शृणु उच्यते ।
अजपार्थमयी गुप्ता वह्निजाया प्रकीर्त्तिता ।
अस्याः सङ्कल्पमात्रेण पुरश्चरणमुच्यते ॥२४॥

'ठ' है चन्द्रबीज । अब उसे सुनो । अर्थमयी गुप्ता अजपा है वह्निजाया (स्वाहा) । पुरश्चरण में इसका केवल संकल्प ही करना चाहिये । मन ही मन 'स्वाहा' मन्त्र के संकल्प मात्र से ही पुरश्चरण सम्पन्न हो जाता है ॥२४॥

प्राणायामद्विषट्केन प्रत्याहारः स उच्यते ।
प्रत्याहारद्विषट्केन (सहस्रेण) जानीयाद्धारणां शुभाम् ॥२५॥

१२ प्राणायामों से १ प्रत्याहार होता है । १२ प्रत्याहार द्वारा १ धारणा सम्पन्न हो जाती है ॥२५॥

धारणा द्वादश प्रोक्ता ध्यानं ध्यानविशारदैः ।
ध्यानद्वादशकैरेव समाधिरवधीयताम् ॥२६॥

ध्यानविशारद लोग १२ धारणा को १ ध्यान कहते हैं । १२ ध्यान से एक समाधि सम्पन्न हो जाती है ॥२६॥

यत्समाधेः परं ज्योतिरनन्तं विश्वतोमुखम् ।
अस्मिन्न दृष्टे क्रिया काचिद् यातायातं न विद्यते ॥२७॥

समाधि में सर्वव्यापी अनन्त परम ज्योतिः का साक्षात्कार कर लेने पर फिर कोई क्रिया आवश्यक नहीं रह पाती । अब जन्म मृत्यु का यातायात भी समाप्त हो जाता है ॥२७॥

यथा सिंहे गजव्याघ्रे वादत्वञ्च शनैः शनैः ।
तथैव चलितो वायुरन्यथा हन्ति साधकम् ॥२८॥

जैसे सिंह-गज-व्याघ्र का युद्ध आपस में धीरे-धीरे बढ़ता जाता है, उसी प्रकार धीरे-धीरे अभ्यास द्वारा प्राणवायु को वशीभूत करना चाहिये । इसमें जल्दबाजी करने से प्राणवायु ही साधक का नाश कर देता है ॥२८॥

चरतां चक्षुषादीनां विषयेषु यथाक्रमम् ।
प्रत्याहारे तथा चैवं प्रत्याहारादिरुच्यते ॥२९॥

चक्षु आदि इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में विचरण करती रहती हैं, अतः उनको प्रत्याहार द्वारा धीरे-धीरे विषयों से हटाना चाहिये। इसी कारण प्रत्याहार का उल्लेख किया गया है ॥२९॥

करणं कुम्भकाद्देवि समाधिश्च प्रजायते ।
पुष्पान्तरगतं ज्योतिर्भ्रुवोर्मध्ये प्रतिष्ठितम् ॥३०॥

हे देवी ! कुम्भक द्वारा करण (मन) समाधिस्थ हो जाता है। भ्रूद्वय के मध्य में (आज्ञाचक्र में) जो द्विदल पद्म है, उसमें ज्योति है। वह ज्योति भ्रूमध्य में ही प्रतिष्ठित है ॥३०॥

तच्चिन्तनं कुलेशानि योगिनां पूजनं महत् ।
ज्योतिषां चिन्तनं चैव ध्यानं विषयसंस्कृतिः ॥३१॥

हे कुलाधीश्वरी ! ज्योतिचिन्तन ही योगी के लिये महत् पूजन है। इसका चिन्तन ही ध्यान है। इस ध्यान के द्वारा योगीगण विषयों से निवृत्त हो जाते हैं ॥३१॥

निर्गुणादिकभावेन वीराणां शृणु मूलकम् ।
सगुणा ज्योतिषां मूर्त्तिर्हृदिस्थां कालिकां स्मरेत् ॥३२॥

यह ज्योति-ध्यान निर्गुण साधना है। अब वीर साधकों के मूल साधन को को सुनो। ज्योतिर्मय सगुण मूर्ति रूप से हृदयस्थित कालिका का चरणों से लेकर मस्तक पर्यन्त ध्यान करो ॥३२॥

आपादं शीर्षपर्यन्तं पूज्या यत्नादिभिः प्रिये ।
ब्रह्माण्डोद्भवद्रव्याणि चर्व्यचोष्यादिकानि च ॥३३॥

हे प्रिये ! उस कालिका का पूजन यत्नपूर्वक करे। ब्रह्माण्डोत्पन्न द्रव्य एवं चर्व्य-चोष्यादि (चबाने वाले, चूसने वाले आदि) भक्ष्य पदार्थ उन्हें प्रदान करे ॥ ३३ ॥

(कालिकायाः मानसपूजा)

फलं पुष्पं तथा गन्धं वस्त्रालङ्कारभूषितम् ।
तत् सर्वं मनसा देयं कालिकायै पुनः पुनः ॥ ३४ ॥

(कालिका का मानसपूजन)

फल-पुष्प-गन्ध-वस्त्र-अलंकार आदि भूषणों को मन ही मन कालिका को प्रदान करना चाहिये ॥ ३४ ॥

पेयं जलनिधेर्मानं द्रव्यं च गिरिमानतः ।
यत्नेनैव प्रपद्यात्तु कालिकायै पुनः पुनः ॥ ३५ ॥

समुद्र के परिमाण में पानीय (पेय), पर्वत परिमाण में अन्यान्य द्रव्यों को यत्नपूर्वक कालिका को पुनः-पुनः प्रदान करे ॥ ३५ ॥

इयञ्च मानसी पूजा लपिता वरवर्णिनि ।
निर्वाणं दिव्यभावैस्तु वीरभावैः समानताम् ॥ ३६ ॥

हे वरवर्णिनी ! इस मानसी पूजा को दिव्यभाव तथा वीरभाव—दोनों भावों से करने से निर्वाण प्राप्त हो जाता है ॥ ३६ ॥

इदं तत्त्वं जपाम्नायं ज्ञात्वा पुरश्चरणमाचरेत् ।
निजाम्नायं विना देवि न कुर्याच्च पुरस्क्रियाम् ॥ ३७ ॥

इस जपाम्नायस्वरूप तत्त्व (मानसिक जपचिन्तन) को जानकर पुरश्चरण करना चाहिये। हे देवी ! साधक को चाहिये कि अपने आम्नाय (अपने ही गुरु के द्वारा उपदिष्ट मन्त्र तथा साधन-विधिके अतिरिक्त अन्य मन्त्र एवं अन्य देवताओं का पुरश्चरण न करे ॥ ३७

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन निजाम्नायं विचिन्तयेत् ।
उत्तराम्नायोदितं सर्वं कालीकुलकुलेश्वरि ॥ ३८ ॥

हे कालीकुलकुलेश्वरी ! इसलिये समस्त प्रयत्नों के साथ इस उत्तराम्नाय (अर्थात् प्रश्नोत्तर के रूप में कहे गये इस उत्तराम्नाय) में कहे गये अपने आम्नाय (मन्त्रादि) का चिन्तन साधक को करना चाहिये ॥ ३८ ॥

सर्वाम्नायोदितं तत्त्वं श्रीकुलञ्च क्रमेण तु।
उत्तराम्नायोदिता विद्या भैरवी त्रिपुरसुन्दरी ॥ ३९ ॥

क्रमशः सर्वाम्नाय में कहे गये तत्त्व का तथा श्रीकुल का चिन्तन करना चाहिये। भैरवी तथा त्रिपुरसुन्दरी विद्या का उपदेश उत्तराम्नाय में कहा गया है ॥ ३९ ॥

मातङ्गी पश्चिमाम्नाये दक्षिणाम्नाये तावुभौ।
धूमा च त्वरिता चैव पूर्वाम्नाये प्रतिष्ठिता ॥ ४० ॥
त्रिपुरा बगला चैव महाविद्या विशेषतः।
दक्षिणाम्नायोदिताः सर्वाः पशुभिः पूजिता सदा ॥ ४१ ॥

पश्चिमाम्नाय में मातंगी, दक्षिणाम्नाय में धूमा तथा त्वरिता, पूर्वाम्नाय में त्रिपुरा एवं बगला नामक महाविद्या विशेषतः प्रतिष्ठित हैं। दक्षिणाम्नाय में जो-जो देवता हैं उनका पूजन पश्वाचारी करते हैं ॥ ४०-४१ ॥

कालीकूर्चं वधुर्जाया प्रणवं वाग्भवं प्रिये।
शूलहस्ता च या विद्योत्तराम्नायोदिता शुभा ॥ ४२ ॥

हे प्रिये ! काली (क्रीं), कूर्च (हुँ), वधु (ह्रीं), जाया (स्वाहा), प्रणव (ॐ), वाग्भव (ऐं) तथा शूलहस्ता विद्या का मन्त्र (क्रीं हुं ह्रीं स्वाहा ॐ ऐं शूलहस्ता) उत्तराम्नाय में शुभ है ॥ ४२ ॥

द्वाविंशत्यक्षरी विद्या दक्षिणाम्नाये प्रतिष्ठिता।
लक्षद्वयं जपेद्विद्यां दिवारात्रिप्रभेदतः ॥ ४३ ॥

२२ अक्षरी विद्या (क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं स्वाहा) का मन्त्र दक्षिणाम्नाय में प्रतिष्ठित है। दिन तथा रात्रि भेद से इसका २ लक्ष जप करे ॥ ४३ ॥

दिवालक्षं जपेद्विद्यां हविष्याशी सदा शुचिः।
दशांशं जुहुयाद्वह्नौ तद्दशांशञ्च तर्पयेत् ॥ ४४ ॥
तद्दशांशाभिषेकञ्च तीर्थतोयेन पार्वति।
तद्दशांशं हविष्यान्नैर्भोजयेद्भक्तितो द्विजान् ॥ ४५ ॥

दिन के समय पवित्र तथा हविष्यान्न खाकर उक्त मन्त्र (अपने अधिकारानुसार उत्तराम्नाय के मन्त्र अथवा दक्षिणाम्नाय के मन्त्र) का एक लाख जप करे। जपान्त में इसका दसवाँ हिस्सा (दस हजार) होम करे। होम के दसवें हिस्से (अर्थात् १०००) के बराबर तर्पण करे। अब तीर्थजल से १०० बार अभिषेक करे। हे पार्वती ! अभिषेक के दसवें हिस्से के बराबर (अर्थात् १०) ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक हविष्यान्न का भोजन करावे ॥ ४४-४५ ॥

(चक्रानुष्ठानम्)

पाशवं कथितं कल्पं शृणु वीरं ततः परम्।
नक्तं यामगते देवि स्वकुलं परिचिन्तयेत् ॥ ४६ ॥

(चक्र का अनुष्ठान)

अब तक जो कुछ बतलाया गया है, वह सब पश्वाचारियों का कल्प (पद्धति) है। हे देवी ! अब वीराचारियों के कल्प को सुनो। एक प्रहर रात्रि व्यतीत हो जाने पर स्वकुल (अपने कुल) का चिन्तन करे। (जो काली-तारा प्रभृति की उपासना करते हैं, उनका कुल है कालीकुल और जो कमला आदि की उपासना करते हैं, उनका कुल है श्रीकुल।) पूजा का अनुष्ठान अपने कुल के अनुरूप ही करना चाहिये ॥ ४६ ॥

आनीय कान्तां सुशीलां कुलभक्तां कुलार्चने।
शक्तिचक्रं द्विधा कृत्वा शक्तिभाले लिखेत्ततः ॥ ४७ ॥

कुलपूजन के लिये कुलभक्त-सच्चरित्रा रमणी को लाये। शक्तिचक्र का दो भाग करके तदनन्तर उस शक्ति (रमणी) के कपाल पर शक्तिचक्र बनाये ॥ ४७ ॥

तत्र कामकलां देवीं शिवकोणे विलेखयेत्।
तन्मध्ये देवमन्त्रस्तु लांच्छितं कमलाञ्चितम् ॥ ४८ ॥

तदनन्तर इस शक्तिचक्र के ईशान कोण पर कामकला देवी का चित्र अंकित करे और शक्ति-चक्र के बीच में पद्मयुक्त देवमन्त्र को रंजित करे ॥ ४८ ॥

तत्र देवीं समावाह्य ध्यात्वा तत्र प्रपूजयेत् ।
ततस्तच्छक्तिकर्णे च ऋषिच्छन्दःसमन्वितम् ।
मूलमन्त्रं त्रिधावृत्त्या कथयेद्वामकर्णके ॥४९॥

तदन्तर उस शक्तिचक्र में देवी (कालिका अथवा श्रीदेवी का अपने कुल के अनुसार) का आवाहन तथा ध्यान करके उस चक्र में उनका पूजन करना चाहिये । तत्पश्चात् उस शक्ति (रमणी) के बायें कान में ऋषि, छन्द तथा मूलमन्त्र की तीन-तीन आवृत्ति करते हुये उच्चारण करे ॥ ४९ ॥

अद्य प्रकृति देवि त्वं कुलदेव्यार्चनं कुरु ।
गुरोराज्यं मूर्ध्नि कृत्वा प्रवृत्तोऽहं कुलार्चने ॥५०॥

(उस स्त्री को देवी कहते हुये) हे देवी ! आज से तुम कुलदेवता का पूजन करो। मैं गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करके कुलपूजा में प्रवृत्त होता हूँ ॥ ५० ॥

ततः पश्चात् कुलागारे कुलचक्रं लिखेत् प्रिये ।
तत्र पूजा कुलद्रव्यैः क्रियते भक्तिभारतः ॥५१॥

हे प्रिये ! तदनन्तर कुलागार (जहाँ कुलपूजन किया जाता है) में कुलचक्र का अंकन करे। वहाँ पर भक्तिपूर्वक कुलद्रव्य (मत्स्य-मांस-मद्य-मुद्रा) द्वारा पूजन करे ॥ ५१ ॥

तत्र चावाहनं नास्ति यतो देवीस्वरूपिणी ।
पूजायित्वा यथान्यायं तत्त्वचिन्तापरो भवेत् ॥५२॥

यहाँ इस पूजन में देवी का आवाहन प्रयोज्य नहीं है। क्योंकि यहाँ देवी स्वरूपतः (रमणी के रूप में) विद्यमान है। विधिवत् पूजन करके साधकको तत्त्वचिन्तन में लग जाना चाहिये ॥ ५२ ॥

तत्त्वचिन्तापरो मन्त्री जपेल्लक्षं कुलाकुलम् ।
दशांशं जुहुयाद्वह्नौ आसवैः पललान्वितैः ॥५३॥

मंत्र का साधक मन्त्र के देवता के चिन्तन में लगकर तान्त्रिक नियम द्वारा एक लाख जप करे। तदनन्तर मांसयुक्त मद्य के द्वारा अग्नि में १०००० होम करे ॥ ५३ ॥

तद्दशांशं तर्पणञ्च सुधापललसंयुतैः ।
अभिषेकं तद्दशांशं तीर्थतोयेन पार्वति ॥५४॥

होम के दशांश का (१०००) तर्पण मद्यमांस युक्त द्रव्य से करे। हे पार्वती ! तदनन्तर एक सौ अभिषेक तीर्थजल से करना चाहिये ॥ ५४ ॥

कुलद्रव्यैस्तद्दशांशं भक्तितो भोजयेद्द्विजान् ।
आदावन्ते च मध्ये च शक्तिं मां भोजयेत् कुलम् ॥५५॥

अभिषेक के दशांश (१०) अर्थात् दस ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक कुलद्रव्य (गौ का दूध, दही, घृत, चीनी, तिन, मूंग, नारियल, केला, आमलकी, कटहल, हरीतकी, हैमान्तिक, धान्य आदि) का भोजन कराये। जप आदि के प्रारंभ, मध्य तथा अन्त में शक्ति (स्त्रीरूपिणी शक्ति) को, मुझे (अर्थात् शिव को अर्थात् सिद्ध कौलसाधक को) भोजन कराये ॥ ५५ ॥

तदभावे कुलेशानि शक्तिञ्चात्र प्रपूजयेत् ।
तासाञ्च कुलचक्रान्ते मनसा च प्रपूजयेत् ॥५६॥

इस प्रकार से सिद्ध साधक भाव से अथवा ब्राह्मण भाव से चक्र में शक्ति (रमणी) का पूजन करे। कुलचक्र कार्य के अन्त में उस शक्तिरूपिणी स्त्री का पूजन भी मन ही मन करे ॥ ५६ ॥

(पुरश्चरणाङ्गपूजादि)

पुरश्चरणकाले च यदि शक्तिं न पूजयेत् ।
तस्य पूजा जपो होमोऽभिचाराय च कल्पते ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शक्तीनां पूजनं चरेत् ॥५७॥

(पुरश्चरण के अंग, पूजा आदि)

यदि पुरश्चरण के समय साधक शक्ति की पूजा नहीं करते, उस स्थिति में साधक की पूजा-जप-होम तो पूजा न रहकर अभिचार कर्म जैसी हो जाती है। उसे पूजा से इष्टसिद्धि नहीं मिलती, प्रत्युत अनिष्ट होने लगता है। अतः समस्त प्रयत्न द्वारा शक्ति (कुलरमणी) का पूजन करना चाहिये ॥ ५७ ॥

पुरश्चरणकाले च संख्या न स्मरिता यदि।
शक्तीनां हि कुमारीणां द्विजाति कुलपालिनाम्।
तोषणं कुलद्रव्येण भोजयेच्च पुनः पुनः ॥५८॥

यदि पुरश्चरण काल में जपसंख्या याद नहीं रहती, उस स्थिति में साधक को चाहिये कि वह कुमारी शक्तियों को (कुमारी कन्याओं को) तथा तन्त्रसाधक ब्राह्मण को सन्तुष्ट करके कुलद्रव्य का पुनः-पुनः भोजन कराये ॥ ५८ ॥

सम्प्रदायविदे विद्वान् दद्यात्तु गुरुदक्षिणाम्।
वस्त्रालङ्कारभूषाद्यैर्भूषयेत् कुलगुरून् प्रिये ॥५९॥

हे प्रिये ! (पुरश्चरण कार्य में) जिन्होंने तन्त्रसाधक का गुरु-शिष्य परम्परा से तत्त्वलाभ किया है, वे विद्वान् तन्त्राभिषेक-अनुष्ठानकारी गुरु को दक्षिणा प्रदान करें तथा उन्हें वस्त्र, अलंकार, रत्न आदि द्वारा भूषित करें ॥ ५९ ॥

तत्सुतं तत्सुतां वापि तत्पत्नीं वा कुलेश्वरि।
पूजयेत् परया भक्त्या मन्त्रसिद्धि लभेद् यतः ॥६०॥

॥ इति निरुत्तरतन्त्रे चतुर्थः पटलः ॥

हे कुलेश्वरी ! गुरु के पुत्र, कन्या, पत्नी आदि की भी शक्ति से पूजा करना चाहिये। इससे साधक मन्त्रसिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥ ६० ॥

॥ चतुर्थ पटल समाप्त ॥

पञ्चमः पटलः

श्रीदेव्युवाच

कीदृशं रजनीं देवीं पूजयेत् किं निवेदयेत्।
तस्या वा कीदृशी पूजा तद्गायत्री च कीदृशी ॥१॥
जपं वा कीदृशं देव पुरश्चर्या च कीदृशी।
साधनं कीदृशं तस्या वद मे परमेश्वर ॥२॥

श्री देवी कहती हैं—हे परमेश्वर ! रजनी देवी का पूजन किस प्रकार से करना चाहिये और उन्हें क्या निवेदन करना चाहिये ? उनकी पूजा का क्या रूप है, उनकी गायत्री किस प्रकार की है ? उनका जप, पुरश्चरण तथा साधना किस प्रकार है ? कृपया मुझे बतलाईए।

(देवी रजनी अर्थात् कुलरमणी। तांत्रिक पूजन रात्रि में ही सम्पन्न किया जाता है, अतः कुलरमणी को ही रजनी देवी कहते हैं। इनका पूजन देवी बुद्धि से करते हैं और इसी प्रकार आन्तरिक पूजन (दिव्याचार) में कुण्डलिनी शक्ति को कौलाचार्यगण रजनी देवी कहते हैं।)

श्रीशिव उवाच

निर्लोभा कामनाहीना निर्लज्जा द्वन्द्ववर्जिता।
शिवा सत्त्वगता साध्वी स्वेच्छया विपरीतगा ॥३॥
एवं सा रजनी त्रिषु लोकेषु गोपिता।
आत्मना पूजने सैव समूले कुलवर्त्मना ॥४॥

श्री शिव कहते हैं—निर्लोभा, कामनाशून्या, लज्जारहित, सुख-दुःख प्रभृति द्वन्द्व से रहित, मंगलमयी, सत्त्व स्वभाव वाली, स्वेच्छा से विपरीत-गामी (वैराग्ययुक्ता—क्योंकि वैराग्य ही संसारधारा से विपरीत धारा है)—

इन लक्षणों से युक्त स्त्रीरूपिणी (कुलरमणी) ही रजनी है। ये त्रैलोक्य में अतिगुप्त हैं। (केवल भाग्यशाली कौलसाधक ही इनका सन्धान प्राप्त करते है।) कुलमार्ग की साधना में इनका ही पूजन मूलमन्त्र से करना पड़ता है और ये ही स्वरूपतः पूजन योग्या हैं ॥३-४॥

अक्षोरन्तर्गतं ज्योतिर्भ्रुवोरन्तः प्रतिष्ठितम् ।
यतो रूपं परं ज्योतिस्तदेव कुलमन्दिरे ॥५॥

दोनों नेत्रों के मध्य में जिस ज्योति का साक्षात्कार साधकगण करते हैं और भ्रूमध्य में जो ज्योति स्थित है और जो ज्योतिःरूप परम रूप है—वह जिनसे उद्भूत है वह ज्योतिस्वरूप ही कुलमन्दिर में (जहाँ कौलसाधना की जाती है) रजनी देवी हैं ॥५॥

(रजनीदेव्याः तर्पणं गायत्री च)

मनसा साधको वीक्ष्य क्रीडनात् पतितामृतम् ।
तेनामृतेन मूलेन तर्पयेद्रजनीं स्वयम् ॥६॥

(रजनीदेवी का तर्पण तथा गायत्री)

मन ही मन उस ज्योति का दर्शन करके रजनी देवी के साथ क्रीड़ा करने से जो अमृत पतित होता है, उस अमृत के द्वारा मूलमन्त्र से तर्पण करते हुये रजनी देवी को तृप्त करे।

(यहाँ अमृत से शिववीर्य का तात्पर्य है, यह देवी की योनि में तर्पण-स्वरूप क्षरित होता है, क्षरण काल ही तर्पण काल है। उस समय मूलमन्त्र की भावना करना आवश्यक है।)

इसका आन्तरिक तात्पर्य अन्य है। साधक ध्यानयोग द्वारा भ्रूमध्य में ज्योति-दर्शन करके खेचरी द्वारा सहस्रार से क्षरित अमृत द्वारा कुलकुण्डलिनी देवी को तृप्त करे।

दिव्याचार साधना में साधक अन्तर्जगत् में ज्योतिःमण्डल में ज्योतिरूप से उद्भासित रजनी देवी के स्पन्दानुभव का अनुभव करता है। यह पश्यन्ति

वाक् की स्थिति है। इस अवस्था में अनुभवरूपिणी पश्यन्ति वाक् रूपी अहं विमर्श के आनन्दानुभव से आप्लुत होकर साधक स्वसंवित्तिमयी देवी का अपने आप में जो सामरस्यानुभव करता है, वही देवी की तृप्ति है ॥६॥

कुलनाथं कुलागारे नियोज्य भावयेच्छिवाम् ।
श्वासोच्छ्वासे च गायत्रीं त्वजपाब्रह्मरूपिणीम् ॥७॥

साधना कक्ष में गुरु की उपस्थिति में (अर्थात् गुरु को शिवरूप से सर्वत्र उपस्थित मानकर) साधक को ब्रह्मरूपिणी अजपागायत्री द्वारा प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में रजनी देवी का चिन्तन करना चाहिये।

इसके आन्तरिक तात्पर्य के अनुसार सहस्रार में स्थित परमशिव के साथ कुलकुण्डलिनी का सम्मिलन अनुभव करते हुये प्रत्येक अन्तःस्पन्दन में अजपा ब्रह्मरूपिणी का ध्यान करना चाहिये ॥७॥

अजपा रजनी गायत्री रजन्यां रजनीं जपेत् ।
न जपेद्दिवसे विद्वान् ब्रह्मविद्यात्मिकां पराम् ।
जपेन्नरकमाप्नोति इहैव दुःखभाग् भवेत् ॥८॥

इन रजनी देवी का मन्त्रजप रात्रि में ही करे। रजनी देवी ही अजपा एवं गायत्री रूपिणी हैं। विद्वान् साधक परब्रह्मविद्यारूपिणी रजनी देवी के मन्त्र का जप दिन में कदापि नहीं करते। दिवस में जप करने से नरक मिलता है और जीवितावस्था में भी दुःख प्राप्त होता रहता है।

जब इड़ा नाड़ी में श्वास चलती है (वामनासिका में श्वास चलती है) तभी इसका जप करना चाहिये। जब पिंगला नाड़ी में (दाहिनी नासिका में) श्वास चले तब इन आद्याशक्ति का जप करना उचित नहीं है ॥८॥

कलानाथं समानीय नियोज्य कुलमन्दिरे ।
योजयित्वा जपेन्मन्त्रं कुलकेन च ताडयेत् ॥९॥

चन्द्रमा (कलानाथ) को मूलाधार मार्ग (कुलमन्दिर) में योनिमण्डलस्थ अपान वायु से नियोजित करे (अर्थात् कुंभक की स्थिति में मन्त्रजप करे,

क्योंकि कुंभक में ही प्राण तथा अपान का मिलन होता है। अब कुंभक के द्वारा पुनः-पुनः (गुदद्वार को सिकोड़े रहकर) वायु को ऊर्ध्व में आकर्षित करता रहे। जब तक वायु सुषुम्ना में प्रवाहित न होने लगे (अर्थात् जब तक सुषुम्नान्तर्गत स्पन्दन में स्थिति न हो) तब तक ताड़न क्रिया करे (अर्थात् गुदद्वार का संकोचन करता रहे। ताकि सूक्ष्म वायु ऊर्ध्वगतिशील हो सके। चन्द्रमा की स्थिति ललाट में है और सूर्य नाभि में स्थित हैं। इन दोनों का योग ही कुंभक है।) ॥९॥

विंशत्या महती पूजा शतेन शतधा भवेत्।
रजन्याः कथिता पूजा ध्यानञ्च तत्त्वचिन्तनम् ॥१०॥

२० कुंभक प्राणायाम द्वारा महती पूजन सम्पन्न हो जाता है। १०० कुंभक से १०० प्रकार का पूजन कहा गया है। इस प्रकार से रजनी देवी की पूजन-विधि का विधान कहा गया। रजनी देवी का ध्यान है शिवशक्ति अभेद का तत्त्वचिन्तन ॥१०॥

सङ्केतज्ञः कलानाथं साधयेदेकचेतसा।
रजनीमूलयोगेन निर्वाणपदवीं व्रजेत् ॥११॥

इस पूजा के संकेत को (रहस्य को) जानने वाला व्यक्ति एकाग्रचित्त से मूलाधार से कुण्डलिनी को ऊर्ध्वोत्थित करते हुये उसका योग सहस्रारस्थ शिव के साथ कराते हुये कलानाथ परमशिव की साधना (समाधिज स्थिति में) करते हुये निर्वाण पद को प्राप्त कर लेते हैं ॥११॥

शठञ्च चुल्लुकं धूर्तं सङ्केतहीनदाम्भिकम्।
सन्त्यज्य साधयेद्विद्यां महामोक्षप्रदायिनीम् ॥१२॥

शठ, पीठ पीछे निन्दा करने वाले, प्रवञ्चक, पूजा-रहस्य को न जानने वाले, दांभिक व्यक्ति का परित्याग करते हुये महामुक्ति देने वाली विद्या का साधना करना चाहिये ॥१२॥

धनाद्वा कामतो वापि लोभाद्वा निजमन्दिरम्।
कारयेद् यदि सा पूजा रौरवं नरकं व्रजेत् ॥१३॥

अर्थप्राप्ति के लिये, कामना-सिद्धि के लिये अथवा लोभ के वशीभूत होकर जो साधनस्थल में स्वार्थपूर्ति हेतु पूजन करता है, उसे उस पूजा के फल रूप में रौरव नरक में निवास हेतु बाध्य होना पड़ता है ॥१३॥

(सङ्केतस्य ज्ञानाज्ञानफलम्)

सङ्केतस्य दृढं ज्ञात्वा साधनं शिवसाधनम्।
अन्यथा दुःखमाप्नोति स याति नरकं ध्रुवम् ॥१४॥

(संकेत के ज्ञानाज्ञान का फल)

दृढ़रूप से पूजादि के संकेत को समझकर जो साधना की जाती है, वह है शिवसाधन (उत्तम साधन), अन्यथा संकेत को जाने बिना साधना से दुःख मिलता है और निश्चित रूप से नरकगामी होना पड़ता है ॥१४॥

प्रकृत्याथ व्रजेद्वापि ज्ञात्वा यच्च प्रपूजयेत्।
सोऽपि निर्वाणतां प्राप्य पुनरावृत्य भूतले ॥१५॥

अथवा संकेतज्ञान रहित साधक अत्यन्त निम्न अवस्था प्राप्त करता है। जो संकेतज्ञान युक्त होकर पूजन करते हैं, वे निर्वाण प्राप्त करते हैं। वे जगत् के अतीत हो जाते हैं ॥१५॥

अभेदप्रकृतिं ज्ञात्वा जपहोमादिकं चरेत्।
सर्वदेवस्वरूपञ्च सर्वमन्त्रस्वरूपिणी।
प्रकृतेस्तत्त्वमास्थाय कैवल्यं याति निश्चितम् ॥१६॥

प्रकृति (कुलरमणी को) आद्याशक्ति से अभिन्न मानते हुये जप-होमादि करना चाहिये। प्रकृति (कुलरमणी) सर्वदेवस्वरूपिणी तथा सर्वमन्त्रस्वरूपिणी हैं। इस प्रकार प्रकृति (कुलरमणी) के तत्त्व का चिन्तन करते हुये साधक निश्चित रूप से मोक्ष प्राप्त करता है ॥१६॥

प्रकृतेस्तत्त्वविद्देवि न स योनौ प्रजायते।
अशोधितमनाचर्यं स्त्रीषु मध्येषु सुव्रते ॥१७॥

हे देवी ! हे सुव्रते ! जो (इस प्रकार से) प्रकृति के तत्त्व को जानते हैं (कुलरमणीतत्त्व जानते हैं) वे यदि स्त्रीगण के बीच कोई असंस्कृत कार्य न करें, उस स्थिति में उनका पुनर्जन्म नहीं होता । १७॥

स्वीकारे सिद्धिहानिः स्याद्रौरवं नरकं व्रजेत् ।
क्षुधार्त्तश्च तृषार्त्तश्च कालिका नैव पूजयेत् ।
पूजयेद् यदि देवेशि क्रुद्धा भवति कालिका ॥१८॥

यदि साधक स्त्री को स्वीकार करता है (शारीरिक कामना हेतु स्वीकार करता है), उस स्थिति में साधक की सिद्धिहानि हो जाती है । यदि वह क्षुधार्त्त, तृष्णार्त्त हो, तब उसे कालिकापूजन नहीं करना चाहिये । (अर्थात् मांस खाने की इच्छा से और मदिरापान की इच्छा से कालिकापूजन में नहीं लगना चाहिये ।) यदि वह कुलपूजन इसलिए करता है कि कुलाचारान्तर्गत उसे स्त्रीसंग मिलेगा तब उसकी सिद्धि नष्ट हो जाती है । हे देवेशी ! ऐसे व्यक्ति द्वारा पूजन करने से कालिकादेवी क्रुद्ध हो जाती हैं ॥१८॥

साधके क्षोभमापन्ने देवीक्षोभः प्रजायते ।
तस्माद् भुक्त्वा च पीत्वा च पूजयेत् कालिकां शुभाम् ॥१९॥

परन्तु यदि साधक यथार्थतः क्षुधाप्राप्त है, तब उसके क्षोभ से देवी को क्षोभ होता है । अतः भोजन एवं पान करके ही पूजन में प्रवृत्त होना चाहिये । (यदि साधक भूखा है, प्यासा है, उस स्थिति में उसका मन पूजन में नहीं लग सकेगा) ॥१९॥

विना पीत्वा सुरा भुक्त्वा मत्स्यमांसं रजस्वलाम् ।
यो जपेद् दक्षिणां कालीं तस्य दुःखं पदे पदे ॥२०॥

बिना सुरापान किये, बिना मत्स्य-मांस एवं रजस्वला स्त्री का भोग किये जो दक्षिणाकाली का पूजन करता है, उसे प्रति पग पर दुःख का सामना करना पड़ता है । (यहाँ यह ज्ञातव्य है कि मत्स्य-मांल-रजस्वला स्त्री संकेत मात्र है । ये जिस गुप्त क्रिया की ओर संकेत करते हैं उसे कौलगुरु से जाने बिना जो

भौतिक मछली, मांस, रजस्वला स्त्री का भोग करने लगता है, वह अनर्थ में जा पड़ता है । अतः कौलगुरु से इन तीनों का तात्पर्य जानकर तब तात्पर्यानुरूप संकेतानुसार इनका सेवन करना चाहिये ।) ॥१०॥

दिव्यभावं वीरभावं विना कालीं प्रपूजयेत् ।
पूजने नरकं याति तस्य दुःखं पदे पदे ॥२१॥

पशुभाव से कालीपूजन न करे । दिव्यभाव एवं वीरभाव से ही कालीपूजन करना चाहिये । दिव्यभाव तथा वीरभाव का अधिकारी हुये बिना कालीपूजन करनेवाले को नरक एवं प्रतिपग पर दुःख ही मिलता है ॥२१॥

लतासवं विना देवि कलौ कालीं न पूजयेत् ।
पशुभावाश्रितो देवि यदि कालीं प्रपूजयेत् ।
रौरवं नरकं याति यावदाहूतसम्प्लवम् ॥२२॥

हे देवि ! लता (कुलरमणी) एवं आसव (मद्य) के बिना कलिकाल में कालीपूजन अविहित है । हे देवी ! यदि पशुभाव से कालीपूजा की जाती है, तब साधक को प्रलयकाल पर्यन्त रौरव नरक प्राप्त होता है ॥२२॥

(शक्तिपूजायाः प्रकारविशेषः)

लतादर्शनमात्रेण कालिकादर्शनं भवेत् ।
दृष्ट्वा च सुन्दरीं शक्तिं कालीं तत्रैव चिन्तयेत् ॥२३॥

(शक्तिपूजा का प्रकार-विशेष)

कुलरमणी के दर्शन से ही कालिका का दर्शन होता है । सुन्दरीशक्ति (कुलरमणी) को देखकर उनमें काली का चिन्तन करना चाहिये ॥२३॥

शून्यागारे श्मशाने वा प्रान्तरे निर्जने वने ।
नदीतीरे पर्वते वा शक्तिं तत्र प्रपूजयेत् ।
एकाकी पूजयेच्छक्तिं निःशङ्को भयवर्जितः ॥२४॥

खाली मकान में, श्मशान में, प्रान्तर में, निर्जन में, वन में, नदी के किनारे अथवा पर्वत पर शक्ति का पूजन करे । शंकारहित होकर भयशून्य स्थिति में शक्तिपूजन करना चाहिये ॥२४॥

गुरुं विना न सङ्गी स्यात् सङ्गी स्यान्नरकं व्रजेत् ।
सङ्गाच्च धनहानिः स्यात् सर्वं सङ्गाद्विनश्यति ॥२५॥

गुरु के बिना (स्त्री) संगी नहीं होती, यदि गुरु के बिना स्त्री संगी हो जाये तब नरक मिलता है। (अर्थात् गुरु के बिना कुलरमणी का वरण न करे, गुरु के द्वारा उपदिष्ट ज्ञान प्राप्त करके ही कुलरमणी का वरण करे।) अन्यथा केवल धनहानि ही नहीं होती, सब कुछ नष्ट हो जाता है ॥२५॥

दूतीयागं ततः पूजां रात्रौ पर्यटनं प्रिये ।
एकाकी सञ्चयेद्वीरो निःशङ्कः सङ्गवर्जितः ॥२६॥

हे प्रिये ! पहले दूतीयाग, तदनन्तर पूजन को रात्रि में ही करे। एकाकी तथा शंकाहीन होकर वीरभाव वाले साधक को संचरण करना चाहिये ॥२६॥

रात्रौ पर्यटनं नास्ति न रात्रौ शक्तिपूजनम् ॥२७॥

रात्रि में (पहली दस दण्ड रात्रि में) और अंतिम पाँच दण्ड रात्रि में पर्यटन उचित नहीं है। रात्रि में (प्रथम दश दण्ड तथा अंतिम ५ दण्ड में) शक्तिपूजन का विधान नहीं है। (महानिशा में विशेष पूजन करना चाहिये ॥२७॥

नार्चयेत् कालिकां देवीं शाम्भवीं सुखमोक्षदाम् ।
मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्राञ्च मैथुनं विना ॥२८॥

मद्य-मांस-मत्स्य-मुद्रा और मैथुन के बिना मंगलमयी सुखमोक्षदायिनी कालिका का पूजन करना उचित नहीं है ॥२८॥

ब्राह्मणो वीरभावेन कालिकायै निवेदयेत् ।
पूजाद्रव्यं महेशानि पशुर्वा यदि पश्यति ।
तद्द्रव्यञ्च जले क्षिप्त्वा इष्टदेवं सुचिन्तयेत् ॥२९॥

हे महेशानी ! ब्राह्मणगण वीरभाव से पूजन का द्रव्य कालिका को निवेदित करें। किन्तु यदि वीरभाव के साधक के पूजाद्रव्य को पशुभाव का साधक देख ले, तब वीरभाव के साधक को चाहिये कि उस पूजन द्रव्य को जल में फेंक कर उत्तमरूप से इष्ट देवता का चिन्तन करे ॥२९॥

धूर्त्तं शठं चुल्लुकञ्च मूर्खंञ्च दाम्भिकं प्रिये ।
एते च पशवाः प्रोक्ताः सर्वान् भावाश्रितांस्त्यजेत् ॥३०॥

हे प्रिय ! धूर्त्त, शठ, चुगलखोर, मूर्ख तथा दांभिक को शास्त्रों ने पशु कहा है। ऐसे व्यक्ति का परित्याग कर देना चाहिये ॥३०॥

पशुभिर्दर्शितं द्रव्यं देवेभ्यो न निवेदयेत् ।
कुलपूजां कुलद्रव्यं कुलस्त्रीं कुलमङ्गलम् ।
गोपनीयं पशोरग्रे प्रकाशान्मरणं भवेत् ॥ ३१ ॥

पशुभावापन्न लोगों द्वारा देखे द्रव्य का निवेदन देवता को नहीं करना चाहिये। कुलपूजा, कुलद्रव्य, कुलस्त्री तथा तांत्रिक मांगलिक सामग्री को पशुभाव वालों से गुप्त रखना चाहिये। उनके सम्मुख कुलपूजा आदि के सम्बन्ध में बतलाने से साधक का मरण होता है ॥३१॥

(पञ्चमकारविधिः)

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च कुलयोगतः ।
पञ्चमैः पूजयेत् कालीं मोक्षार्थी च कलौ प्रिये ॥२३॥

(पञ्चमकार की विधि)

हे प्रिये ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रगण तन्त्राभिषिक्त होकर कलि में पंचमकार द्वारा कालीपूजन करें और मोक्षार्थी भी इसी के द्वारा कालीपूजन करें ॥३२॥

ब्राह्मणैः पीयते मद्यं न मद्यं द्विजपुङ्गवैः ।
कलावासवयोगेन तर्पयेत् कालिकां प्रिये ॥३ ॥

हे प्रिये ! ब्राह्मणगण (अभिषिक्त वीर एवं दिव्य भाव वाले साधक) ही मद्यपान करें, परन्तु जो अभिषिक्त नहीं हैं अथवा पशुभावापन्न हैं, वे मद्य का पान न करे। कलि में पंचमकार से ही कालिका का तर्पण होता है ॥३४॥

पाने भ्रान्तिर्भवेद् यस्य चूर्णा स्याद्रक्तरेतसोः ।
स पापिष्ठो यजेन्नैव कालीं कलुषहारिणीम् ॥३४॥

मद्यपान से जो उन्मत्त हो जाते हैं अथवा जिनका रज या रेतः मैथु द्वारा क्षरित होता है, वे पापीगण कदापि काली कलुषहारिणी की पूजा करें।

कालीं तारां तथा छिन्नां त्रिपुरां भैरवीं तथा।
कलावासवयोगेन सर्वदा पूजयेद्द्विजः ॥३५॥

द्विज (तन्त्र में अभिषिक्त, दीक्षित) को चाहिये कि वह कलिकाल मद्य तथा मांसादि द्वारा काली, तारा, छिन्नमस्ता, त्रिपुरा एवं भैरवी का पूजन करे ॥३५॥

श्मशानभैरवीञ्चैव उग्रताराञ्च पञ्चमीम्।
मातङ्गीञ्च तथा धूम्रां बगलां भुवनेश्वरीम्।
राजराजेश्वरीं बालां त्वरितां महिषमर्दिनीम्।
कलावेताश्चासवैश्च पूज्याश्च दक्षिणां विना ॥३६॥

11868

कलियुग में श्मशानभैरवी, उग्रतारा, मातंगी, धूम्रा, बगला, भुवनेश्वरी, राजराजेश्वरी बाला, महिषमर्दिनी त्वरिता का पूजन मद्य के द्वारा बिना दक्षिणा करे। (यहाँ दक्षिणा का तात्पर्य यह भी है कि बिना दक्षिणमार्ग के पूजन करे अर्थात् वाममार्गानुमोदित विधि से करे) ॥३३॥

ब्राह्मणो वीरभावेन सुरां पीत्वा जपेन्मनूम्।
सुराभावे च गोक्षीरं द्विजो दद्याद् युगे युगे ॥३७॥

ब्राह्मण को सुरा पीकर वीरभाव से मन्त्रजप करना चाहिये। सुरा के अभाव में युग-युग में द्विज के लिये गोदुग्ध विहित है ॥३७॥

द्रव्याभावे चानुकल्पैः पूजयेत् परदेवताम्।
एकादश्यां व्यतीपाते कर्मलोपं न कारयेत् ॥३८॥

यदि मत्स्य आदि द्रव्य न मिले तब अनुकल्प द्वारा पूजन करे। मत्स्य का अनुकल्प—जल अथवा भूमि पर उत्पन्न रक्तपुष्प अथा रक्तवर्ण फल। मांस का अनुकल्प—लवण, तिल, लशुन, उर्द की दाल से बने पदार्थ आदि। मद्य का अनुकल्प—काँसे के बर्तन में रखा नारियल का जल। मुद्रा का अनुकल्प—

उँगलियों से बनायी मुद्राकृति। मैथुन का अनुकल्प—चम्पक प्रभृति के साथ बकपुष्प प्रभृति को मिलाना। साधक को चाहिये कि एकादशी एवं व्यतिपात योग में भी कर्मलोप न करे। एकादशी में पंचमकार द्वारा कालिका आदि का पूजन निषिद्ध है। व्यतिपात में ज्योतिष के अनुसार सर्वकर्म निषेध है, परन्तु यहाँ श्री शिव कहते हैं कि एकादशी एवं व्यतिपात में भी कौलाचार के कुल-कर्म को करते रहना चाहिये ॥३८॥

न कृते च गुरोरर्चां क्रमात् कोऽपि प्रलीयते।
केवलं विषयासक्तः पतत्येव न संशयः ॥३९॥

गुरु की अर्चना से विमुख ब्रह्मा भी पतित हो जाते हैं। गुरु की पूजा के बिना विषयासक्त व्यक्ति निःसंदिग्धरूप से पतित हो जाते हैं ॥३९॥

अग्रे चक्रं वीरभावं तत्कार्यं गुरुसन्निधौ।
तदभावे भ्रातृभिः सार्धं कार्यञ्चैव विधानतः ॥४०॥

प्रथमतः वीरभाव के चक्र का तथा चक्रकार्य का अनुष्ठान गुरु के सन्निधान में करना चाहिये। यदि गुरु न हों, उस स्थिति में गुरुभाइयों के साथ शास्त्रोक्त रीति से चक्रकार्य करे ॥४१॥

पृथक्पात्रे पिबेद् द्रव्यं पृथक्पात्रे च भोजनम्।
शक्तियुक्तं वसेद्वापि युग्मं युग्मविधानतः ॥४१॥

गुरुभाई तथा अपने पात्र को अलग-अलग ही रखकर उसमें मद्यपान करना चाहिये। मत्स्यादि को भी पृथक्-पृथक् (अपने-अपने) पात्र में खाना चाहिये। अपनी-अपनी ही शक्ति (कुलरमणी) के साथ भक्तिपूर्वक भोजन एवं मद्यपान की व्यवस्था करे। अन्य की शक्ति (कुलरमणी) के साथ यह क्रिया न करे ॥४१॥

शक्त्युच्छिष्टं पिबेन्मद्यं वीरोच्छिष्टञ्च चर्वणम्।
स्वज्येष्ठस्य च भोक्तव्यं कनिष्ठस्य न भोजयेत् ॥४२॥

शक्ति के द्वारा प्रयुक्त बचे हुये मद्य को पीये। अपने से बड़े वीर साधक द्वारा छोड़े गये मांसादि का चर्वण करे। अपने से बड़े (साधनाधिकार में

बड़े) साधक की जूठन को खाया जा सकता है, परन्तु अपने से कनिष्ठ साधक की जूठन का व्यवहार करना निषिद्ध है ॥४२॥

(चक्रमध्ये अनुष्ठानविधिः)

निजशक्तिं विना देवि शक्त्युच्छिष्टं पिबेद् यदि ।
रौरवे नरके घोरे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥४३॥

(चक्र में अनुष्ठान की विधि)

हे देवी ! जो अपनी शक्ति के अतिरिक्त दूसरे की शक्ति द्वारा जूठे छोड़े गये मद्य का पान करता है, वह १४ इन्द्रों की आयु तक घोर रौरव नरक में निवास करता है ॥४३॥

एकासने वसेद् वस्तु भुञ्जीत चैकभोजने ।
परस्परमुखस्पर्शात् स याति नरकं ध्रुवम् ॥४४॥

जो अन्य की शक्ति के साथ एक ही आसन पर बैठता है, एक साथ भोजन करता है, परस्पर एक के मुख से दूसरे के मुख का स्पर्श करता है, वह निश्चितरूपेण नरकगामी हो जाता है ॥४४॥

एकासनस्थो यो वीरो दिव्यो वा कुलसुन्दरि ।
सुधां पीत्वा वीरचक्रे रौरवं नरकं व्रजेत् ॥४५॥

हे कुलसुन्दरी ! जो वीरसाधक वीरचक्र में अन्य किसी के साथ एक ही आसन पर बैठ कर पान करता है, तो वह इस सुधापान के कारण रौरव नरक में जाता है ॥४५॥

महासिद्धीश्वरो वापि भुङ्क्ते पीत्वा परस्परम् ।
सिद्धिहानिं पुरस्कृत्य स याति नरकं ध्रुवम् ॥४६॥

यहाँ तक कि महान् सिद्धेश्वर कौल भी एक ही आसन पर बैठकर पारस्परिक रूप से पान एवं भोजन करे, तब उसकी भी सिद्धि नष्ट हो जाती है और उसे निश्चित रूप से नरकगामी होना पड़ता है ॥४६॥

विना शक्तिं पिबेद्द्रव्यं वीरो गुरुपरायणः ।
तथापि नरके घोरे पतत्येव न संशयः ॥४७॥

यदि वीरसाधक गुरुपरायण हो तथापि बिना शक्ति (कुलरमणी) के ही द्रव्यपान करे, तब उसे घोर नरक में जाना पड़ेगा; यह निःसंदिग्ध है ॥४७॥

शक्त्यभावे कुलेशानि तद्द्रव्यं जलतः क्षिपेत् ।
गुर्वभावे तद्भागं च जलतो विनिवेदयेत् ॥४८॥

॥ इति निरुत्तरतन्त्रे पञ्चमः पटलः ॥

हे कुलेश्वरी ! कुलरमणी के अभाव में उस सुरा आदि द्रव्य को जल में फेंक देना चाहिये और गुरु के अभाव में उसके अंश के द्रव्य को भी जल में निवेदित करे ॥४८॥

। पंचम पटल समाप्त ।

षष्ठः पटलः

श्रीदेव्युवाच—

रजनीपूजनादेव द्रुतं सिद्धिः कथं भवेत् ।
तत्त्वं कथय मे सर्वं यद्यहं तव वल्लभा ॥१॥

श्रीदेवी कहती हैं—रजनी देवी (के पूजन से) किस प्रकार से क्षिप्रता से सिद्धि प्राप्त होती है ? यदि मैं आपकी प्रिया हूँ तब मुझसे यह तत्त्व प्रकट करें ॥१॥

श्रीशिव उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि लोकसंशयभेदकम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तिः प्रजायते ॥२॥

श्री शिव कहते हैं—हे देवी ! लोगों के सन्देहनाशक तत्त्ववाक्य को श्रवण करो। इसके ज्ञानमात्र से जीवन्मुक्ति प्राप्त हो जाती है ॥२॥

अज्ञानतिमिराच्छन्ना आवयोः स्मृतिवर्जिताः ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति संसारजलधौ जनाः ॥३॥

हमारी स्मृति से शून्य अज्ञानतिमिर से आवृत लोकसमूह संसारसमुद्र में आसिञ्चित हो रहे हैं और उसमें विलीन हो जाते हैं ॥३॥

सर्वं नार्यस्त्वमेवासि सर्वेऽहं पुरुषाः प्रिये ।
एतद्विज्ञानमात्रेण जायते सिद्धिभाजनः ॥४॥

हे प्रिये ! समस्त स्त्रीसमूह भी तुम ही हो और समस्त पुरुष मैं ही हूँ, इस ज्ञान से साधक सिद्धि का भागी हो जाता है ॥४॥

श्रीदेव्युवाच

सर्वज्ञ जगतां नाथ सर्वलोकहिते रत ।
केनैतद्द्रुतसिद्धिः स्यात्तन्मे ब्रूहि कुलेश्वर ॥५॥

श्रीदेवी कहती हैं—हे सर्वज्ञ ! जगत् के नाथ ! समस्त लोकों के हित में रत ! कुलेश्वर ! कृपया यह बतलाइये कि द्रुत रूप से सिद्धि कैसे प्राप्त होती है ॥५॥

श्रीशिव उवाच--

चपलासि वरारोहे हेमगौराङ्गि पार्वति ।
संसारभेदकं ज्ञानं कथन्ते कथयाम्यहम् ॥६॥

श्री शिव कहते हैं—हे सुन्दरी, सुवर्णगौर अंगोंवाली पार्वती ! तुम चञ्चला हो। मैं किस प्रकार तुमसे संसारनाशक ज्ञान का उपदेश करूँ ? ॥६॥

श्रीदेव्युवाच—

चपलाहं सावहिता महादेव भवाम्यहम् ।
संसारभेदकं तत्त्वं कथयस्व कृपां कुरु ॥७॥

श्रीदेवी कहती हैं—हैं महादेव ! मैं चंचला होने पर भी एकाग्र मन हो जाती हूँ। मुझ पर कृपा करके संसारनाशक ज्ञान का उपदेश दीजिये ॥७॥

(संसारनाशकज्ञानम्)

श्रीशिव उवाच--

संसारभेदकं ज्ञानं न प्रकाश्यं कदाचन ।
प्रकाश्यते यदा यस्मिन् स हि मत्सदृशो भवेत् ॥८॥

(संसारनाशक ज्ञान)

श्री शिव कहते हैं—संसारनाशक ज्ञान का कभी भी प्रकाशन नहीं करना चाहिये। यह ज्ञान जब जिस व्यक्ति के सम्मुख प्रकाशित होता है, वह तत्काल मेरे समान हो जाता है ॥८॥

भीत्या वाकर्षिता प्रीत्या धनाद्वा हीनजा तथा ।
चार्वङ्गी सस्मिता प्रीता यौवनाहितविग्रहा ॥९॥
वीक्षमाणा तनुक्षीणे प्रोक्षणस्य च तत्परा ।
आनीय वीरभावेन सुप्रीता चार्घदानतः ॥१०॥
विस्तीर्णमासनं दत्त्वा भवत्याधानतत्परः ।
स्वयं मत्सदृशो भूत्वा निःस्पृहो विगतस्पृहः ॥११॥

भय, प्रीति या धन द्वारा जिस हीनजातीय स्त्री को लाया जाता है, वह स्त्री सुन्दर आँखों वाली, हास्य युक्त, सन्तुष्ट, यौवनान्विता हो। उसके शरीर का मध्य भाग (कटिप्रदेश) पतला हो, सुदृश्या हो। उसे अभिषेक के योग्य होना चाहिये। इस प्रकार की स्त्री को वीरभाव से लाकर अर्घ्यदान के द्वारा उत्तम प्रीति दिखलाये। उसे विस्तीर्ण आसन प्रदान करके साधक निःस्पृह, तृष्णाशून्य तथा मेरे समान शुद्ध होकर उस रमणी के साथ आधान (तांत्रिक विधि-विशेष) में प्रवृत्त हो। (यह आधान पंचमकार के अन्तिम मकार का तात्पर्य ध्वनित करता है) ॥९-११॥

विन्दुमात्रेण मदनसद्मनि निधाय चक्रम् ।
वशकारी गिरीन्द्रजाता आज्ञाकरस्य रजनीमथवा ॥१२॥
निशीथे तु बलिं दत्त्वा निरुक्तविधिना ततः ।
आवयोः प्रीतिजनकं ध्यात्वा तत्परकर्मणा ॥१३॥

न कार्यः कर्मसन्देहो घृणालज्जाविवर्जितः ।
भक्त्या भावमापन्नः प्रकृतिसस्मितप्रदः ॥१४॥

उत्तरादेव फलं तस्मिन् पुंसि तद्भावमागते ।
मनोजा सा तु विज्ञाने क्रमेण परितोषिता ॥१५॥

किं दातासि वरं त्वं मे मधुताम्बूलतर्पिते ।
अथवा स्थिरधीर्निरीक्ष्यमाणे तव चक्रं रतिविग्रहं वीर ॥१६॥

मदनगृह में (जहाँ रमणी के साथ आधान कार्य हो) विन्दु मात्र ही चक्र आधान करे (अर्थात् विन्दु मात्र से अधिक स्खलन न हो)। अब गिरीन्द्र-कन्यातुल्य रमणी को वशीभूत करे अथवा मध्य रात्रि में उस रजनी देवी की पूजा पहले कही गयी विधि से करे और मेरा और गौरी का प्रीतिजनक ध्यान करे। इस कर्म-विशेष के प्रति संदिग्ध नहीं होना चाहिये। घृणा तथा लज्जा से भी रहित रहे। घृणा-लज्जा वर्जित होकर जो साधक शक्तिभाव को प्राप्त हो जाता है, उससे प्रकृति (रजनी देवी = कुलरमणी) आनन्दित होती हैं। इस प्रकार शक्तिचिन्तन में तन्मय होकर वह व्यक्ति त्वरित रूप से फल प्राप्त करता है। इस अवस्था में वह आकर्षिता शक्ति (कुलरमणी) क्रमशः परितोषिता हो जाती हैं। अब पुरुष-साधक शक्ति से कहता है--(शक्ति = कुलरमणी) हे मद्यताम्बूल द्वारा तर्पिते ! तुम मुझे क्या वर दोगी ? स्थिर चित्त से निरीक्षण करने पर शक्ति कहती हैं--हे वीर ! मैं तुम्हे रतिविग्रह चक्र दूँगी ॥१२-१६॥

अयुतमथवा सहस्रं शतमष्टाधिकं जपेन्मनूम् ।
स तु कार्तिकेयविक्रमो मत्तस्य मम भावं प्रतियाति ॥१७॥

तदनन्तर साधक रतिविग्रह चक्रप्राप्ति के अनन्तर) दस हजार अथवा एक हजार अथवा एक सौ आठ मन्त्रजप करे। इस प्रकार जप करके वह साधक कार्त्तिकेय के समान बलशाली होकर परम आनन्द में मत्त तथा शिव भाव से युक्त हो जाता है ॥१७॥

विश्रान्ते तव मम पर्वणि नित्यं योगीन्द्रो भावनानिपुणः ।
कुरुते गुरूपदिष्टं भुवि भैरवभावमर्हति ॥१८॥

वे समस्त विप्र (पूर्वाभिषिक्त लोग) दुर्गाष्टमी (देवी पर्व) तथा शिव-चतुर्दशी (शिव पर्व) में ध्यानरहित होकर योगीन्द्र हो जाते हैं। वे गुरूपदिष्ट कर्म करके पृथ्वी पर (जीवितावस्था में ही) भैरव भाव की प्राप्ति कर लेते हैं ॥१८॥

कथयामि वरारोहे श्रृणु तत्त्वं परात्परम् ।
कथितं नैव कस्मैचित् यदि संसारमिच्छति ॥१९॥

हे वरारोहे ! अब परतत्त्व से लेकर परात्पर तत्त्व पर्यन्त का उपदेश दे रहा हूँ, श्रवण करो। अब तक इस तत्त्व का उपदेश किसी को भी नहीं मिला है। यदि तुम संसार (कल्याणार्थ) इच्छा करती हो, तब श्रवण करो ॥१९॥

स्त्रीपुंसोः सङ्गमे सौख्यं जायेत तत्परं पदम् ।
तदावयोश्च विन्यस्तं याभ्यां ताभ्यां कृतं नहि ॥२०॥

स्त्री-पुरुष संगम से जो सुख प्राप्त होता है उसमें जो स्त्री एवं पुरुष हर पार्वती के सामरस्य रूप परमानन्द की भावना करते हैं, उन स्त्री एवं पुरुष का कोई कर्म शेष नहीं रह जाता ॥२०॥

भाजनं सर्वविद्यानां ब्राह्मणः कामिनीगणे ।
वीराणां जायते श्रेष्ठो भुवि भुवि इवास्पदम् ॥२१॥

ऐसे ब्राह्मण (जो अभिषिक्त साधक हैं) समस्त विद्याओं के आधार हो जाते हैं। स्त्रीसमूह में वे वीर साधक श्रेष्ठ होकर पृथ्वी में अथवा अन्य लोकों में स्त्रीगण के आश्रयस्वरूप भी हो जाते हैं ॥२१॥

आवयोर्मनसा प्रीतिं यः कुर्याद्विजितेन्द्रियः ।
योऽसौ कालीं भजेद्भक्त्या स एव हि न चान्यथा ॥२२॥

जो व्यक्ति जितेन्द्रिय होकर मन ही मन हम पर (शिव-पार्वती पर) प्रीति भक्ति रखते हैं, वे ही वस्तुतः काली के उपासक हैं, अन्यथा (जो जितेन्द्रिय नहीं हैं) वे भक्त नहीं हैं ।।२२।।

यः करोति सपर्यान्ते देवि सद्गुरुमार्गतः ।
सन्देहो नैव कर्त्तव्यो यदि संसिद्धिमिच्छति ।।२३।।

हे देवी ! जो सद्गुरु द्वारा बताये विधान से पूजा करके अन्त में पूर्वोक्त रहस्य का तत्त्वचिन्तन करता है, भक्ति करता है, वह यदि सिद्धिकामी है, तो उसे सिद्धि मिलती है । इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये ।।२३।।

मनोरूपा हि संसिद्धिर्जायते नात्र संशयः ।
कुलागारे लभेत् सिद्धिं देवानामपि दुर्लभाम् ।।२४।।

ऐसे साधक को मन की इच्छा के अनुसार सिद्धि प्राप्त होती है । यह निःसंदिग्ध है । ऐसा व्यक्ति कुलमन्दिर में (जहाँ तंत्रानुष्ठान होता है) देवताओं को भी दुर्लभ सिद्धि की प्राप्ति करता है ।।२४।।

वर्त्तमाने पूजने तु यदि सन्देहभाजनः ।
लभते नैव संसिद्धीर्जन्मकोटिसहस्रकैः ।।२५।।

इस पूजा के प्रति जो संदेह रखता है वह सहस्रकोटि जन्मों में भी सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता ।।२५।।

इति कथितं परं यत् सहसा सिद्धिविधायकं महेशि ।
जगदतिदूरं विशेषतस्ते मृगशावाक्षि विधेहि दक्षिणाम् ।।२६।।

हे महेशी ! सहसा सिद्धिप्रदायक इस विधान का मैंने उपदेश किया । जो साधना इस पृथ्वी के लिये दुर्लभ है, उस साधना का उपदेश तुम्हें दिया गया । हे मृगशावकनयनी ! मुझे दक्षिणा दो ।।२६।।

श्रीदेव्युवाच--

प्रेयसी तव देवेश गिरीन्द्रस्य च नन्दिनी ।
दक्षिणा कीदृशी नाथ वदताञ्च वदाम्यहम् ।।२७।।

श्री देवी कहती हैं—हे देवाधिदेव ! मैं आपकी प्रियतरा गिरीन्द्रकन्या हूँ । हे नाथ ! दक्षिणा का रूप क्या है ? कृपया कहें । यह जानने पर मैं आपको दक्षिणा दूँगी ।।२७।।

एवमाकर्ण्य देवेशः सस्मितो लोललोचनः ।
स्वं पश्यन् गिरिजां वीक्ष्य शृणु देवि वरानने ।।२८।।

यह सुनकर देवेश महादेव किञ्चित् मुस्कराते हुये तथा चंचलनयन होकर अपने को तथा पार्वती को देखकर बोले—हे सुन्दरमुखी ! सुनो ।।२८।।

अरुणमरुणतल्पं प्रान्तदेशे निधाय,
पृथुलकुचयुगलं क्रोडे प्रौढमालिङ्गनं यत् ।
सरसवदनेभ्यः कर्मणा येन वक्षः-
सुतन्वालिङ्गिता दक्षिणाभेदसिद्धौ ।।२९।।

।।इति निरुत्तरतन्त्रे षष्ठः पटलः ।।

दक्षिणा-विशेष की सिद्धि के लिये एक हलके रक्तवर्ण की कुंकुमादि से युक्त शय्या को एक और स्थापित करके भारी स्तनयुगल को (हाथों में) धारण करके वक्ष एवं मनोहर शरीर का जिस कर्म द्वारा आलिंगन होता है (वही दक्षिणा है) ।।२९।।

।। षष्ठ पटल समाप्त ।।

———

सप्तमः पटलः

(अभिषेकविधिः)

श्रीदेव्युवाच—

भगवन् सर्वजीवानां साक्षी त्वमसि हे प्रभो ।
अभिषेकं पुरा प्रोक्तं कीदृशं कथय प्रभो ॥ १ ॥

(अभिषेक-विधि)

श्री देवी कहती हैं—हे प्रभो ! हे भगवन् ! आप समस्त जीवों के साक्षी हैं। आपने पहले अभिषेक के सम्बन्ध में उपदेश दिया है। वह अभिषेक किस प्रकार का है ? ॥ १ ॥

श्रीशिव उवाच

अभिषेकञ्च द्विविधं राज्ञाञ्च ज्ञानिनामपि ।
राजाभिषेकं देवेशि वैदिकादिक्रियाञ्चरेत् ॥ २ ॥

श्री शिव कहते हैं—अभिषेक दो प्रकार से किया जाता है। जैसे राजाओं का अभिषेक एवं ज्ञानियों का अभिषेक। हे देवेशी ! राजाभिषेक में वैदिक आदि क्रिया का अनुष्ठान करते हैं ॥ २ ॥

ज्ञानिनामभिषेकन्तु सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।
कुलचक्रं क्रमेणैव अभिषेकं चरेत् सुधीः ॥ ३ ॥

ज्ञानियों के अभिषेक को समस्त तन्त्रों में गुप्त रखा गया है। सुधीजन तन्त्रोक्त चक्रानुष्ठान द्वारा क्रम (का पालन करते हुये) से अभिषेक सम्पन्न करते हैं ॥ ३ ॥

कुलनाथं गुरुं वीक्ष्य अभिषेकं गुरुश्चरेत् ।
सर्वशान्तिकरं पुण्यं सर्वरोगनिवारणम् ॥ ४ ॥

धनदं कामदञ्चैव आयुर्वृद्धिकरं नृणाम् ।
सर्वसौभाग्यजननं महापातकनाशनम् ॥ ५ ॥
सर्वाशापूरकं देवि मन्त्रदोषप्रणाशनम् ।
सर्वार्थसाधकं देवि धनवृद्धिकरं परम् ॥ ६ ॥

तांत्रिक क्रियाओं में निष्णात तथा तन्त्रोक्त साधनाओं में निपुण गुरु का आश्रय लेकर उन गुरु का नियोग अभिषेकानुष्ठान में श्रद्धापूर्वक करने से वे गुरु स्वयं ही अभिषेक कार्य सम्पन्न करा देते हैं।

इस प्रकार का अभिषेकानुष्ठान सभी प्रकार से शान्तिकारक, पुण्यकारक, सर्वरोगनिवारक, धनप्रदायक, कामनापरिपूरक, आयुवृद्धिकारक, समस्त सौभाग्यदायक और महापातकों का नाश करने वाला हो जाता है। हे देवी ! इससे समस्त आशाएँ परिपूर्ण हो जाती हैं। मन्त्रों का छिन्नादि दोष नष्ट हो जाता है। चतुर्वर्ग रूपी अर्थ प्राप्त होता है। इससे अतिशय धनवृद्धि भी होती है ॥ ४-६ ॥

अभिचारहरं सर्वं ग्रहदोषनिवारणम् ।
भूतावेशादिशमनं डाकिनीनां भयापहम् ॥ ७ ॥
तेजोवृद्धिकरं देवि सर्वतीर्थफलप्रदम् ।
स्त्रीगतेष्वपि दोषेषु शरीरे मानसे तथा ।
तक्षकेणापि दष्टस्य विषपीडाविनाशनम् ॥ ८ ॥

यह अभिषेकानुष्ठान शत्रु द्वारा किये अभिचार-प्रयोग का नाशक है और ग्रहों के दोष का निवारण करने वाला है। इससे भूत-प्रेतादि के आवेश की भी शान्ति होती है तथा डाकिनियों द्वारा उत्पन्न भय भी समाप्त हो जाता है।

हे देवी ! यह तेज वृद्धिकारक, समस्त तीर्थों के फल को देने वाला, स्त्री के शरीर तथा मन के दोषों का नाशक और तक्षक द्वारा डँसे गये विष के प्रभाव को भी नष्ट करने वाला है ॥ ७-८ ॥

तेजोह्रासे बले ह्रासे बुद्धिह्रासे धनक्षये ।
विकारे देशिकः कुर्यादभिषेकं विचक्षणः ॥ ९ ॥

तेज की न्यूनता होने पर, बल का ह्रास होने पर, बुद्धि का ह्रास होने पर, धनक्षय की स्थिति में, अन्य शारीरिक या मानसिक विकार की स्थिति में बुद्धिमान् लोग गुरु के द्वारा अभिषेकानुष्ठान कराते हैं ॥ ९ ॥

असौभाग्यं च नारीणामभिषेकः प्रवर्त्तते ।
पूर्णाभिषेकी त्वनन्याभिषेके प्रवर्त्तते ॥ १० ॥

स्त्री की सौभाग्यहानि होने पर इसका अनुष्ठान कराना चाहिये । पूर्णाभिषिक्त व्यक्ति अपने से अभिन्न रूप नारी को अभिषेक कराते हैं (तन्त्रोक्त प्रथा के अनुसार पूर्णाभिषिक्त व्यक्ति अन्य पूर्णाभिषिक्त का अभिषेक परस्पर करते एवं कराते रहते हैं ।) ॥ १० ॥

गुरुत्वञ्च लभेद्देवि कर्मणा चाभिषेकतः ।
वैष्णवः गाणपत्यश्च सौरः शैवः कुलेश्वरि ।
अभिषेकं प्रकुर्वीत शाक्तश्च कुलभूषणः ॥ ११ ॥

हे देवी ! अभिषेक द्वारा गुरुत्व प्राप्त होता है । हे कुलेश्वरी ! वैष्णव, गणपति-उपासक, सूर्योपासक, शैव तथा तन्त्रोक्त साधना करने वाले शाक्तगण भी अभिषेक का अनुष्ठान करते हैं ॥ ११ ॥

मन्त्रतन्त्रश्च सर्वेषामभिषेकाद्धि सिध्यति ।
अभिषेकेण सर्वेषामधिकारी भवेद्ध्रुवम् ॥ १२ ॥

अभिषेक कृत्य द्वारा समस्त तंत्रोक्त पद्धतियाँ एवं मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं । साधक समस्त तंत्रोक्त कृत्य करने का अधिकारी भी हो जाता है ॥१२॥

अभिषेककृतो विप्रो ब्रह्मत्वं लभते ध्रुवम् ।
अभिषेककृतः क्षत्री विप्रधर्मत्वमागतः ॥१३॥

अभिषेक करने वाला ब्राह्मण अवश्यमेव ब्रह्मत्व प्राप्त करता है और क्षत्रिय इसके द्वारा विप्रत्व प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता है ॥१३॥

वैश्यः क्षत्रियतां याति शूद्रो वैश्यत्वमागतः ।
अभिषेकेन सर्वेषां बद्धोऽपि बद्धतां त्यजेत् ॥१४॥

अभिषेक कर्म के द्वारा वैश्य को क्षत्रियत्व एवं शूद्र को वैश्यत्व की सम्प्राप्ति हो जाती है । इस कर्म से समस्त बद्ध व्यक्ति बन्धनमुक्त हो जाते हैं ॥१४॥

ब्राह्मणस्य सुरापाने ब्राह्मण्यं त्यजते क्षणात् ।
अभिषेककृते विप्रे सुरापानं विधीयते ॥१५॥

यदि ब्राह्मण सुरापान करता है, तब उसका ब्राह्मणत्व उसी समय लुप्त हो जाता है, परन्तु अभिषेक करने वाले ब्राह्मण के लिये सुरापान विहित है ॥१५॥

आगमः पञ्चमो वेदः कुलमाश्रय पार्वति ।
शिवोऽपि पञ्चमो वर्णः सिद्धविद्या जपेद् यदि ॥१६॥

हे पार्वती ! आगम (तंत्र) पंचम वेद है । तुम तंन्त्रोक्त आचार (कुल) का आश्रय लो । शिव भी (चतुर्वर्ण के अतिरिक्त) पंचम वर्ण है, अतः वे सिद्धविद्या का जप करते हैं ॥१६॥

सवर्णत्वं परित्यज्य शिवत्वं सम्प्रजायते ।
अभिषेकं विना नैव ब्राह्मणः सुपिवेत् सुराम् ॥१७॥

अच्छे वर्णों (सवर्ण) का त्याग करने पर ही शिवत्व प्राप्त होता है । अभिषेक के बिना ब्राह्मण सुरापान का अधिकारी नहीं होता ॥१७॥

प्रगृह्य सिद्धविद्याञ्च सङ्केतज्ञस्ततो भवेत् ।
सङ्केतज्ञः कुलागारे नाभिषेकं समाचरेत् ॥१८॥

सिद्धविद्या प्राप्त करने के उपरान्त ही साधक साधना के रहस्य संकेतों का ज्ञाता हो सकता है । संकेतज्ञ व्यक्ति तांत्रिक पूजानुष्ठान वाले स्थान पर कदापि अभिषेक-प्रक्रिया न करे ॥१८॥

अभिषेककृतो मन्त्री कुलपूजां समाचरेत् ।
कुलपूजाकृतो मन्त्री पितृभूमिं समाश्रयेत् ॥१९॥

अभिषेक कर्म का अनुष्ठान करके कुलपूजा करे । यह कार्य श्मशान में करे ॥१९॥

पितृभूमिकृतं स्थानं एकाकी विहरेत् सदा ।
एकाकी विहरेद्वीरः प्रान्तरे च त्रिप्रान्तरे ॥२०॥

श्मशान में साधक को सदैव एकाकी साधना में लगे रहना चाहिये । वीर साधक ऐसे स्थान में, जहाँ दूर-दूर तक जल एवं वृक्ष की छाया न हो तथा जहाँ ऐसे तीन निर्जन स्थान का संगम हो, वहाँ पर विचरण करते हुये साधना करे ॥२०॥

तत्र सिद्धि लभेद्देवि देवानामपि दुर्लभाम् ।
कुलाचारं विना देवि तन्त्रमन्त्रं न सिद्ध्यति ॥२१॥

हे देवी ! ऐसे श्मशान में साधना करने से देवदुर्लभ सिद्धि प्राप्त होती हैं, किन्तु कुलाचार का पालन किये बिना तन्त्र-मन्त्र सिद्ध नहीं हो सकते ॥२१॥

सिद्धविद्या कुलागारे द्रुतं सिद्धचति निश्चितम् ।
अभिषेककृतो विप्रः सुरां दद्याद् युगे युगे ॥२२॥

सिद्धविद्या की सिद्धि कुलागार में (अर्थात् जहाँ काली-तारा आदि की पूजा होती है) क्षिप्रता से प्राप्त होती है । अभिषेकप्राप्त विप्रगण युग-युग से (देवी को) सुरा प्रदान करते रहते हैं ॥२२॥

सुरां पीत्वा जपेद् विद्यां कुलागारे विशेषतः ।
विजया चानुकल्पञ्च सुराभावे निवेदयेत् ॥२३॥

सुरापान करके विद्याओं का मन्त्रजप करना चाहिये । विशेषतः कुलगृह में ऐसा करना उचित है । सुरा के अभाव में उसके बदले में बतलाया गया द्रव्य अथवा अन्य द्रव्य प्रदान करे ॥२३॥

(अभिषेकस्य आवश्यकता महत्त्वञ्च)

कामाख्यायाः विशेषेण कालिका सिद्धिदा भवेत् ।
कुलाचारं विना देवि कालीमन्त्रो न सिद्धचति ॥२५॥

(अभिषेक की आवश्यकता एवं महत्त्व)

विशेषतः कालिका देवी कामाख्या क्षेत्र में साधना करने पर विशेष फल प्रदान करती हैं । हे देवि ! कुलाचार का पालन किये बिना तांत्रिक प्रक्रिया कदापि सिद्ध नहीं होती, कालीमन्त्र सिद्ध नहीं होता ॥२५॥

अभिषेकं विना देवि कुलकर्म करोति यः ।
तस्य पूजादिकं कर्म चाभिचाराय कल्पते ॥२६॥

हे देवी ! जो व्यक्ति अभिषेक के बिना ही कुलाचार (तांत्रिक) साधना करता है, उसकी पूजा वगैरह फलदायक न होकर अभिचार कर्म ऐसा दुष्फल देने लगती है ॥२६॥

अभिषेकं विना देवि सिद्धविद्यां ददाति यः ।
तावत् कालं वसेद् घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥२७॥

हे देवी ! जो गुरुगण अभिषेक के बिना ही (शिष्य को) सिद्धविद्या प्रदान करते हैं, वे उस समय तक घोर नरक में वास करते हैं, जब तक कि सूर्य तथा चन्द्र की स्थिति रहती है ॥२७॥

ब्रह्मत्वञ्च हरित्वञ्च शिवत्वञ्च कुलेश्वरि ।
सर्वसिद्धीश्वरत्वञ्च अभिषेकेण जायते ॥२८॥

हे कुलेश्वरी ! अभिषेक के द्वारा ब्रह्मत्व, विष्णुत्व, शिवत्व तथा समस्त सिद्धियों का ईश्वरत्व प्राप्त हो जाता है ॥२८॥

दिव्यो वीरश्च देवेशि कुलभक्तिपरायणः ।
अभिषेकं चरेद्धीमान् मोक्षार्थी कुलकर्मसु ॥२९॥

हे देवताओं की अधीश्वरी ! बुद्धिमान् दिव्यभावापन्न साधक एवं कुल-भक्तिपरायण को कुल कर्मों में मोक्ष के लिये अभिषेक करना चाहिये ॥२९॥

विमुखः कुलधर्मेषु कुलद्रव्यपरायणः ।
स याति नरकं घोरं काकं वा परजन्मनि ॥३०॥

जो व्यक्ति कुलद्रव्यसंग्रह करके भी कुलधर्म रूपी तांत्रिक प्रक्रिया से विमुख है, वह घोर नरक यातना के पश्चात् अगले जन्म में कौआ की योनि प्राप्त करता है ॥३०॥

तस्मात् सर्व प्रयत्नेन अभिषेकं समाचरेत् ।
अभिषेकं चरेद्देवि अधिवासपुरःसरम् ॥३१॥

अतः समस्त प्रयत्नों द्वारा अभिषेक करना चाहिये। हे देवी ! प्रथमतः अधिवास कर्म करके तब अभिषेककर्म सम्पन्न करे ।।३१।।

वृद्धिश्राद्ध ततः कुर्याच्छिवशक्तिं प्रपूजयेत् ।
गुरुं सम्पूज्य विधिवत् स्वर्णालङ्कारभूषणैः ।।३२।।

पहले वृद्धिश्राद्ध (आत्युदयिक, नान्दीमुख श्राद्ध) करे। तदनन्तर शिव-शक्ति का पूजन सम्पन्न करे। तत्पश्चात् स्वर्णालङ्कार आदि द्वारा गुरु का पूजन करना चाहिये ।।३२।।

ततः सङ्कल्प विधिना गुरुणां वरणञ्चरेत् ।
ततः पूजां चरेद्देव्याः पञ्चमैश्च पृथक् पृथक् ।।३३।।

तदनन्तर संकल्प के अनुसार गुरु का वरण करे। उनका पूजन करके देवी का पूजन करे। गुरु, इष्टदेवी, शिव तथा शक्ति की पृथक्-पृथक् पूजा पंचम तत्व से करना चाहिये ।।३३।।

प्रणम्य सद्गुरुं देवदेवीञ्च साधकेश्वरः ।
गुरुपूजा विधायाथ देव्या ध्यान परायणः ।।३४।।

साधकश्रेष्ठ व्यक्ति सद्गुरु तथा देवी देवताओं को प्रणाम करके गुरुपूजा सम्पन्न करते हुये देवी के ध्यान में लीन हो जाये ।।३४।।

अभिषेकं विधायाथ शुचौ देशे च देशिक ।
शून्यागारे नदीतीरे विल्वमूले त्रिप्रान्तरे ।।३५।।
महात्रिपान्तरे वापि निर्जने पितृकानने ।
ग्रामे पातालके वापि पर्वते तटिनीतटे ।
देवतायतने वापि स्थानञ्च परिचिन्तयेत् ।।३६।।

।। इति श्री निरुत्तरतन्त्रे सप्तमः पटल ।।

तदनन्तर आचार्य अभिषेक के लिये शुद्ध स्थान पर, शून्य गृह में, नदीतीर पर, बिल्व के नीचे, तीन निर्जन स्थल के संगम पर, विशाल त्रिप्रान्तर अथवा निर्जन श्मशान में, ग्राम में, मृत्तिका के नीचे, गर्भसदृश स्थल में अथवा नदी-तीरस्थ पर्वत अथवा नदीतीरस्थ देवालय में ही कृत्य करे ।।३६।।

।।सप्तम पटल समाप्त ।।

अष्टमः पटलः

(घटस्थापनम्)

श्रीशिव उवाच—

शिवशक्तिञ्च सम्पूज्य स्थापयेद् घटमुत्तमम् ।
नातिह्रस्वं नातिदीर्घं स्वर्णरोप्यविनिर्मितम् ।।१।।

(घटस्थापन)

श्री शिव कहते है—शिव-शक्ति का पूजन करके स्वर्ण अथवा चाँदी से निर्मित, न तो छोटा, न तो अत्यन्त बड़ा (मध्यमाकार) घट स्थापन करे ।।१।।

विशेषार्घ्यस्य यन्त्रे वा त्रिकोणे वापि विन्यसेत् ।
कामबीजेन सम्प्रोक्ष्य वाग्भवेनैव ताडयेत् ।।२।।

विशेषार्घ्य के यन्त्र (त्रिकोण-वृत्त तथा चतुष्कोण मण्डल में) पर अथवा त्रिकोण यन्त्र के ऊपर उस घट को स्थापित करना चाहिये। अब "क्लीं" मन्त्र द्वारा घट का प्रोक्षण करके उस घट का वाग्भव मन्त्र "ऐं" के द्वारा ताड़न करना चाहिये ।।२।।

शक्त्याधारे समारोप्य मायया पूरणं जलैः ।
मन्त्रेणानेन तीर्थानि देशिकस्तु प्रविन्यसेत् ।।३।।
ॐ गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राश्च सरांसि च ।
सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि जलदाः नदाः ।।४।।
ह्रदाः प्रस्रवणाः पुण्याः स्वर्गपातालभूषिताः ।
सर्वतीर्थाणि पुण्यानि घटे कुर्वन्तु सन्निधिम् ।।५।।

'ह्रीं' मन्त्र के द्वारा घट को आधार पर स्थापित करके उसमें "ह्रीं" बीज का उच्चारण करते हुये जल भरे और श्लोक ४ एवं ५ में अंकित मन्त्र द्वारा

आचार्य को घट में समस्त तीर्थों का आवाहन करना चाहिये। गंगा आदि समस्त नदियाँ, समस्त समुद्र, समस्त सरोवर, स्रोतों का जल, समस्त मेघ, समस्त नद, पवित्र ह्रदसमूह, झरने, स्वर्ग, पाताल तथा समस्त पुण्यतीर्थ इस घट में सन्निहित हैं, ऐसी भावना करे ॥३-५॥

श्रीबीजेन प्रजप्तेन पल्लवं प्रतिपादयेत् ।
कूर्चेन फलदानं स्यात् स्त्रीबीजेन स्थिराचरेत् ॥६॥

'श्री' बीज का जप करते हुये पल्लव का स्पर्श करे (पल्लव को घट पर स्थापित करे)। 'कूर्च' बीज (हुं) द्वारा फल का शोधन करना चाहिये। "स्त्रीं" बीज द्वारा घट का स्थिरीकरण करते हैं ॥६॥

सिन्दूरं वह्निबीजेन पुष्पं प्रेतेन विन्यसेत् ।
मूलेन प्रणवेनापि दूर्वां दद्याद् विचक्षणः ॥७॥

"रं" बीज द्वारा सिन्दूरार्पण, "यं" बीज द्वारा पुष्पार्पण और पूजित देवता के मूलमन्त्र में ॐ कार लगाकर विचक्षण साधक को दूर्वार्पण करना चाहिये ॥७॥

हुं फट् स्वाहेति मन्त्रेण कुर्याद्दर्भेन ताडनम् ।
विचिन्त्य देवीं पीठञ्च तत्रावाह्य प्रपूजयेत् ॥८॥

"हुं" फट् स्वाहा" मन्त्र पढ़ते हुये कुशा के द्वारा ताड़न किया जाता है। तत्पश्चात् पीठ एवं देवी का चिन्तन करते हुये उस पीठ पर देवी का आवाहन करके पूजन करे ॥८॥

अनेनैव विधानेन सर्वकर्मसु सुन्दरि ।
घटं स्थाप्य यजेद्देवि षट्कर्मसु विशेषतः ॥९॥

हे सुन्दरी ! इस प्रकार से कार्य करते हुये घटस्थापन एवं पूजन करे। हे देवी ! षट्कर्म हेतु (मारण-उच्चाटन-मोहन-विद्वेषण-शान्ति एवं पुष्टि हेतु) इसी प्रकार से घटस्थापन करके देवी का पूजन करना विहित है ॥९॥

महापूजां चरेद्धीमान् षोडशैरुपचारकैः ।
गुरूणाञ्च महापूजा शक्तीनाञ्च ततः परम् ॥१०॥

तत्पश्चात् साधकानाञ्च कुर्याच्च परिपूजनम् ।
कुमारीभ्यो बलिं दत्वा कुलजाभ्यो विशेषतः ॥११॥
अभिषेकं ततो देवि कुर्याच्च गुरुमार्गतः ।
स्वतन्त्रोक्तविधानेन मन्त्रमुच्चारणैः सह ॥१२॥

धीमान् साधक को षोडशोपचार द्वारा महापूजा का अनुष्ठान करना चाहिये। प्रथमतः गुरुगण की महापूजा, तत्पश्चात् शक्तिगण का, तदनन्तर साधकगण का पूजा-विधान करना चाहिये। सत्कुल में उत्पन्न कुमारियों को बलि प्रदान करके उनका गुरु द्वारा बताये गये विधान के अनुसार अभिषेक करना चाहिये। अपनी गुरुपरम्परा द्वारा उपदिष्ट साधन से क्रमानुसार मन्त्र का उच्चारण करते हुये अभिषेक करना चाहिये ॥१०-१२॥

चालयेत् तु घटं मन्त्री मन्त्रेणानेन देशिकः ।
उत्तिष्ठ ब्रह्मकलश सेवितोऽशेषसिद्धिदः ॥१३॥

नीचे लिखे मन्त्र से मन्त्रवान् गुरु घट को उठायें और कहें "हे ब्रह्मकलश ! सेवित हो ! तुम अशेष सिद्धियों के दाता हो ! उठो ! ॥१३॥

सर्वतीर्थाम्बुपूर्णेन पूरयामि मनोरथम् ।

समस्त तीर्थों के जल से परिपूर्ण इस घट द्वारा अभिलाषाएँ पूर्ण हों।

ईशानेन्दुस्मरक्षौणी तदन्ते भुवनेश्वरी ॥१४॥
मन्त्रेणानेन वाद्यानां निर्घोषैश्चालयेद् घटम् ।
अभिषिञ्चेद् गुरुः शिष्यं यजमानं पुरोहितः ॥१५॥

ईशान (हौ), इन्दु (ं), स्मर (क), क्षौणी (ल) तथा अन्त में भुवनेश्वरी लगाने से "ह्रौं क्लीं भुवनेश्वरी" मन्त्र सिद्ध होता है। इस मन्त्र द्वारा वाद्य बजाते हुये घट को उठाना चाहिये। तदनन्तर गुरुरूपी पुरोहित को यजमान-शिष्य का अभिषेक (घटजल से) करना चाहिये ॥१४-१५॥

सिञ्चेद्दुष्टग्रहेऽश्वत्थैः पल्लवैर्भूतसङ्गमे ।
सिञ्चेदौडुम्बरैर्मन्त्रशेषे च करवीरजैः ॥१६॥

यशोधनाय तेजस्वी फलकामे च भूतकैः ।
तुलसीमञ्जरीभिश्च सर्वपापक्षयार्थिभिः ॥१७॥

दुष्टग्रह का प्रकोप होने पर पीपल के पत्ते से अभिषेक किया जाता है। भूतावेश होने पर गूलर की शाखा से, मन्त्रदोष होने पर करवीर के पत्ते से, यश के लिये तेजस्वी पत्ते द्वारा, फलप्राप्ति के लिये अपराजिता लता द्वारा और समस्त पापों के क्षय हेतु तुलसी की मञ्जरी द्वारा अभिषेक करना चाहिये ॥१६-१७॥

सर्वतीर्थफलावाप्तेः शाक्तानां बिल्वसम्भवैः ।
अभिचारे नारसिंहैरभिषेकं प्रचक्ष्यते ॥१८॥

बेल की शाखा से अभिषेक करने पर शाक्त साधकों को समस्त तीर्थों का फल प्राप्त हो जाता है। अभिचार कर्म में नारसिंह की शाखा द्वारा अभिषेक करे ॥१८॥

कुर्याद् दर्भेषु गर्भेषु दोषेषु स्त्रीकृतेषु च ।
असौभाग्येन नारीणां दूर्वाभिः सेचनं चरेत् ॥१९॥

स्त्री के दोष में कुश के द्वारा अभिषेक करे। स्त्री का सौभाग्य नष्ट होने पर दूर्वा द्वारा अभिषेक करना चाहिये ॥१९॥

अथवा

सर्वकार्येषु सिद्धार्थैर्दूर्वया चूतपल्लवैः । अस्याभिषेकस्य दक्षिणामूर्त्तिः ऋषिरनुष्टुप् छन्दः शक्तिर्देवता सर्वसङ्कल्पसिद्धार्थे विनियोगः ॥२०॥

अथवा समस्त कार्यों की सिद्धि के लिये आतपतंडुल, दूर्वा और आम के पत्ते से अभिषेक करना चाहिये। ऋष्यादि न्यास इस प्रकार से हैं—इस अभिषेक के ऋषि हैं दक्षिणामूर्त्ति, छन्द है अनुष्टुप्, इसके देवता हैं शक्ति और समस्त सिद्धियों हेतु अभिषेक का विनियोग (प्रयोग) किया जा रहा है ॥२०॥

(अभिषेकमन्त्रः)

ॐ राजराजेश्वरी शक्तिर्भैरवी कालभैरवी ।
श्मशानभैरवी देवी त्रिपुरानन्दभैरवी ॥२१॥

त्रिपूटा त्रिपुरादेवी तथा त्रिपुरसुन्दरी ।
त्रिपुरेशी महादेवी तथा त्रिपुरमालिका ॥२२॥
त्रिपुरानन्दिनी देवी तत्रैव त्रिपुरातनी
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥२३॥

(अभिषेक-मन्त्र)

राजराजेश्वरी शक्ति, भैरवी, कालभैरवी, श्मशानभैरवी देवी, त्रिपुरानन्दभैरवी; त्रिपूटा; त्रिपुरादेवी, त्रिपुरसुन्दरी, त्रिपुरेशी, महादेवी, त्रिपुरमालिका, त्रिपुरानन्दिनी देवी, त्रिपुरातनी देवी तुम्हारा मन्त्रपूत जल से अभिषेक करें ॥२१-२३॥

छिन्नमस्ता महादेवी तथा चैकजटेश्वरी ।
तारा च जयदुर्गा च शूलिनी भुवनेश्वरी ॥२४॥
हरिताख्या महादेवी तथा च रतिघण्टिका ।
नित्या च नित्यरूपा च वज्रप्रस्तारिणी तथा ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥२५॥

महादेवी, छिन्नमस्ता, एकजटेश्वरी धूमावती, तारा, जयदुर्गा, शूलिनी, भुवनेश्वरी, हरितामहादेवी, रतिघण्टिका, नित्या, नित्यरूपा तथा वज्रप्रस्तारिणी मन्त्रपूत जल द्वारा तुम्हारा अभिषेक करें ॥२४-२५॥

अश्वारूढा महादेवी तथा महिषमर्दिनी ।
दुर्गा च नवदुर्गा च श्रीदुर्गा भगमालिनी ॥२६॥
तथा भगन्दरी देवी भगक्लिन्ना तथा परा ।
सर्वचक्रेश्वरी देवी तथा दक्षिणकालिका ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥२७॥

अश्व पर आसीन महादेवी, दुर्गा, महिषमर्दिनी, नवदुर्गा, श्रीदुर्गा, भगमालिनी, भगन्दरी देवी, अपरा, भगक्लिन्ना, सर्वचक्रेश्वरी देवी तथा दक्षिणकालिका मन्त्रपूत जल से तुम्हें अभिषिक्त करें ॥२६ २७॥

क्षेमङ्करी महाकाली चानिरुद्धा सरस्वती ।
मातङ्गी चान्नपूर्णा च राजराजेश्वरी तथा ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥२८॥

क्षेमङ्करी, महाकाली, अनिरुद्धा, सरस्वती, मातंगी, अन्नपूर्णा, राजराजेश्वरी देवी मन्त्रपूत जल द्वारा तुम्हारा अभिषेक करें ॥२८॥

उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ।
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥२९॥

उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा, अतिचण्डिका देवी मन्त्रपूत जल से तुम्हें अभिषिक्त करें ॥२९॥

उग्रदंष्ट्रा महादंष्ट्रा सुदंष्ट्रा तु कपालिनी ।
भीमनेत्रा विशालाक्षी मङ्गला विजया जया ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥३०॥

उग्रदंष्ट्रा, महादंष्ट्रा, सुदंष्ट्रा, कपालिनी, भीमनेत्रा, विशालाक्षी, मंगला, विजया तथा जयादेवी मन्त्रपूत जल द्वारा तुमको अभिषिक्त करें ॥३०॥

मङ्गला नन्दिनी भद्रा लक्ष्मीः कीर्त्तिर्यशस्विनी ।
पुष्टिर्मेधा शिवा साध्वी यशःशोभा जया धृतिः ।
आनन्दा च सुनन्दा च नन्दिन्यानन्दपूजिता ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥३१॥

मङ्गला, नन्दिनी, भद्रा, लक्ष्मी, कीर्त्ति, यशस्विनी, पुष्टि, मेधा, शिवा, साध्वी, यशःशोभा, जया, धृति, आनन्दा, सुनन्दा, नन्दिनी एवं नन्दपूजिता देवी मन्त्रपूत जल से तुम्हें अभिषिक्त करें ॥३१॥

विजया मङ्गला भद्रा स्मृतिः शान्तिः क्षमा धृतिः ।
सिद्धिस्तुष्टिः रमा पुष्टिः श्रीः सिद्धिश्च रतिस्तथा ॥३२॥
दीप्ता कान्तिर्यशोलक्ष्मीरीश्वरी बुद्धिरेव च ।
शक्री माया रतिर्ब्राह्मी जयन्ती चापराजिता ॥३३॥

अजिता मानवी श्वेता प्रीतिस्त्वदितिरेव च ।
माया चैव महामाया मोहिनी क्षोभिणी तथा ॥३४॥
कमला विमला गौरी लावण्याम्बुधिसुन्दरी ।
दुर्गा क्रियारुन्धती च तथैव विग्रहात्मिका ॥३५॥
चर्टिका चापरा ज्ञेया तथैव सुरपूजिता ।
वैवस्वती च कौमारी तथा माहेश्वरी परा ॥३६॥
वैष्णवी च महालक्ष्मीः कार्तिकीः कौशिकी तथा ।
शिवदूती च चामुण्डा मुण्डमालाविभूषिता ।
एतास्त्वाममभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥३७॥

विजया, मंगला, भद्रा, स्मृति, शान्ति, क्षमा, धृति, सिद्धि, तुष्टि, रमा, पुष्टि, श्री, सिद्धि, रति, दीप्ता, कान्ति, यशोलक्ष्मी, ईश्वरी, बुद्धि, शक्री, माया, महामाया, मोहिनी, क्षोभिणी, कमला, विमला, गौरी, लावण्याम्बुधिसुन्दरी, दुर्गा, क्रिया, अरुन्धती, विग्रहात्मिका, अपरा और चर्टिका ज्ञेय हैं। सुरपूजिता, जया, वैवस्वती, कौमारी तथा परामहेश्वरी भी ज्ञेय हैं। महालक्ष्मी, वैष्णवी, कार्तिकी, कौशिकी, शिवदूती, चामुण्डा, मुण्डमालाविभूषिता मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करें ॥३२-३७॥

इन्द्रो वह्निर्यमश्चैव नैर्ऋतो वरुणस्तथा ।
पवनो धनदेशानौ ब्रह्मानन्ता दिगीश्वराः ॥३८॥
संवत्सराश्चायेन च मासपक्षदिनानि च ।
तिथयश्चाभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥३९॥

इन्द्र, यम, अग्नि, नैर्ऋत, वरुण, पवन, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा तथा अनन्त आदि दिग्पति, संवत्सर, उत्तरायण-दक्षिणायन, मास, पक्ष, दिन, तिथि मन्त्रपूत जल से तुम्हें अभिषिक्त करें ॥३८-३९॥

रविः सोमः कुजः सौम्यो गुरुः शुक्रः शनैश्चरः ।
राहुः केतुश्च सततमभिषिञ्चन्तु ते ग्रहाः ॥४०॥

रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु प्रभृति ग्रह तुम्हारा सतत अभिषेक करें ।।४०।।

नक्षत्रं करणं योगोऽमृतसिद्धिस्ततः परम् ।
दग्धं पापं तथा भद्रा योगो वाराः क्षणास्तथा ।।४१।।
वारवेला कालवेला दण्डा राश्यादयस्तथा ।
अभिषिञ्चन्तु सततं मन्त्रपूतेन वारिणा ।।४२।।

नक्षत्र, करण, योग, अमृतसिद्धि, मासदग्ध, पापदग्ध, महादग्ध, पापयोग, भद्रा, योग, वार तथा क्षण, वारवेला, कालवेला, दण्ड तथा राशि आदि इस मन्त्रपूत जल द्वारा तुम्हारा अभिषेक करें ।।४१-४२।।

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोध उन्मत्तसंज्ञकः ।
कपाली भीषणाख्यश्च संहाराऽष्टौ च भैरवाः ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।। ४३ ।।

असितांग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण तथा संहार नामक अष्ट भैरव मन्त्रपूत जल से तुम्हारा अभिषेक करें ।। ४३ ।।

डाकिनीपुत्रिका चैव राकिनीपुत्रिका तथा ।
ततश्च रङ्किणीपुत्री देवीपुत्री ततः परम् ।। ४४ ।।
मातृणाञ्च तथा पुत्री चोर्ध्वमुख्या सुताश्चयाः ।
अधोमुख्याः सुताश्चैव व्यालमुख्याः सुताः पराः ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।। ४५ ।।

डाकिनीपुत्रिका, राकिनीपुत्रिका, रङ्किनीपुत्रिका, देवीपुत्री, षोडश मातृका-गण की पुत्री तथा ऊर्ध्वमुखी समस्त कन्यायें, अधोमुखी कन्यायें, व्यालमुखी कन्यायें तुमको मन्त्रपूत जल से अभिषिक्त करें ।। ४४-४५ ।।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।। ४६ ।।

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव देवता मन्त्र से पवित्र इस जल द्वारा तुमको अभिषिक्त करें ।। ४६ ।।

पुरुषः प्रकृतिश्चैव विकारश्चैव षोडशः ।
आत्मा परात्मा जीवात्मा ज्ञानात्मा परमात्मनः ।। ४७ ।।
आत्मानश्चात्मनश्चैव स्थूलसूक्ष्माश्च च ये परे ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।। ४८ ।।

पुरुष, प्रकृति, १६ विकार (११ इन्द्रियाँ, पंचमहाभूत), आत्मा, परात्मा, जीवात्मा, ज्ञानात्मा, परमात्मा एवं आत्मा के आत्मसमूह, स्थूल तथा सूक्ष्मरूपी समस्त शरीरधारी तुम्हारा मन्त्रपूत जल से अभिषेक करें ।। ४७–४८ ।।

वेदादिबीजं हुंबीजं स्त्रीबीजं तन्निकेतनम् ।
शक्तिबीजं रमाबीजं सुधाबीजञ्च केवलम् ।। ४९ ।।
चिन्तारत्नं महाबीजं नारसिंहञ्च तारकम् ।
मार्तण्डभैरवं दौर्गबीजं श्रीपुरुषोत्तमम् ।। ५० ।।
गाणपत्यञ्च वाराहं कालीबीजं भयापहम् ।
त्वामेवामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।। ५१ ।।

वेदादिबीज (ॐ), हुँ बीज, स्त्रीं बीज, इनका आश्रय, शक्तिबीज ह्रीं, रमाबीज श्रीं, सुधाबीज ह्रीं, चिन्तारत्नरूप महाबीज, तारक नारसिंह बीज, ह्रीं, मार्तण्डभैरव बीज, दुर्गाबीज, श्रीपुरुषोत्तम बीज, गणपति बीज, वराह बीज, काली बीज क्रीं मन्त्रपूत जल द्वारा तुमको अभिषिक्त करें ।। ४९–५१ ।।

वह्निश्च वह्निजाया च वषट् कूर्चमतः परम् ।
वौषट्कारन्तु फट्कारमभिषिञ्चन्तु सर्वदा ।। ५२ ।।

वह्नि, वह्निजाया (स्वाहा), वषट्, हुं, वौषट्, फट् बीज तुम्हें सर्वदा अभिषिक्त करें ।। ५२ ।।

नश्यन्तु प्रेतकूष्माण्डा राक्षसा दानवाश्च ये ।
पिशाचागुह्यका भूता अभिषेकेण तर्पिता ।। ५३ ।।

अभिषेक द्वारा तृप्त होकर प्रेत, कूष्माण्ड, राक्षस, दानव, पिशाच, गुह्यक एवं भूत अदृश्य हो जायें ।। ५३ ।।

अलक्ष्मी कालकर्णी च पापानि सुमहान्ति च।
नश्यन्तु चाभिषेकेण ताराबीजेन ताडिताः ॥ ५४ ॥

अभिषेक में ताराबीज से ताड़ित होकर अलक्ष्मी, कालकर्णी, महापाप आदि नष्ट हो जायें ॥ ५४ ॥

रोगा शोकाश्च दारिद्र्यं दौर्बल्यं चित्तविभ्रमः।
नश्यन्तु चाभिषेकेण मन्मथेन च ताड़िताः ॥ ५५ ॥

अभिषेक में मन्मथ द्वारा ताड़ित होकर रोग, शोक, दरिद्रता, दुर्बलता एवं चित्तविभ्रम अदृश्य हो जायें ॥ ५५ ॥

तेजोह्रासो बुद्धिह्रासः शक्तिह्रासस्तथैव च।
नश्यन्तु चाभिषेकेण शक्तिबीजेन ताडिताः ॥ ५६ ॥

अभिषेक में शक्तिबीज द्वारा ताड़ित होकर तेजहानि, बुद्धिहानि, शक्तिहानि का नाश हो जायें ॥ ५६ ॥

निरामिषा महारोगा डाकिन्यो मातरस्तथा।
घोराभिचारा क्रूराश्च ग्रहनागास्तथैव च।
नश्यन्तु चाभिषेकेण कालीबीजेन ताडिताः ॥ ५७ ॥

दिरामिष नामक समस्त महारोग, डाकिनी, मातृसमूह, घोर अभिचार-समूह, क्रूरग्रह एवं नागसमूह अभिषेक में कालीबीज द्वारा ताड़ित होकर नष्ट हो जायें ॥ ५७ ॥

नश्यन्तु विपदः सर्वाः सम्पदः सन्तु सुस्थिराः।
पूर्णाभिषेके शाक्तानां पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ॥ ५८ ॥

पूर्णाभिषेक द्वारा शाक्तों की समस्त विपत्तियाँ नष्ट हों, समस्त सम्पत्तियाँ सुस्थिर हो जायें और मनोरथों की पूर्ति हों ॥ ५८ ॥

एवमासिञ्च्य शिष्यन्तु पुनः पूजां समाचरेत्।
शिष्योऽपि तत्र सम्पूज्य गुरवे दक्षिणा ददेत् ॥ ५९ ॥

इस प्रकार से शिष्य का अभिषेक करके गुरु पुनः पूजा करे। शिष्य भी पूजन करके गुरु को दक्षिणा प्रदान करे ॥ ५९ ॥

गोभूमिः स्वर्णरूप्यञ्चै नानारत्नानि पार्वति।
सर्वस्वं वा तदर्द्धं वा तदर्द्धं वापि दक्षिणा ॥ ६० ॥

हे पार्वती ! गौ, भूमि, स्वर्ण, चांदी, नानारत्न, समस्त सम्पत्ति अथवा उसका आधा अथवा उसका भी आधा दक्षिणा में दे ॥ ६० ॥

श्रीविद्यां सिद्धकालीञ्चै तारां वा महिषमर्दिनीम्।
शिष्याय भक्तियुक्ताय प्रदद्याद्देशिकः स्वयम् ॥ ६१ ॥

गुरु भी स्वयं भक्तियुक्त होकर श्रीविद्या, सिद्धकाली, तारा अथवा महिषमर्दिनी का मन्त्र शिष्य को प्रदान करे ॥ ६१ ॥

श्रीविद्यां कालिकां तारां यो जपेत् परमेश्वरीम्।
तस्मै नैव प्रदातव्यम् आसां मन्त्रं विना प्रिये ॥ ६२ ॥

हे प्रिये ! जो श्रीविद्या, कालिका अथवा परमेश्वरी तारा का जप करते हैं, उन्हें इन्हीं विद्याओं के अतिरिक्त अन्य विद्याओं का मन्त्र कदापि नहीं देना चाहिये ॥ ६२ ॥

प्रणम्य दण्डवद्भूमौ ततश्चै परिकल्पयेत्।
त्रैलोक्ययोषितां नाथ किं करोमि वदस्व मे ॥ ६३ ॥

अब शिष्य की भूमि पर दण्डवत् प्रणाम करते हुये यह चिन्तन करना चाहिये—'हे समस्त त्रिलोकी के स्त्रीसमूह के नाथ ! यह बतायें कि अब मैं क्या करूँ ? ॥ ६३ ॥

श्रीगुरुउवाच—

कुलाचारञ्च भो वत्स सुगोप्यं कुरु सर्वतः।
स्वशक्तिं कौलिकी कृत्वा तत्र पूजां प्रकल्पयेत् ॥ ६४ ॥

श्रीगुरु कहते हैं—हे वत्स ! कुलाचार को पूर्णतः गुप्त रखते हुए शक्ति (स्त्री) को कौलिकी (तंत्राचार में निपुण) बनाकर उसका पूजन करो ॥ ६४ ॥

सिद्धमन्त्री यजेच्छक्तिं कायेन मनसापि वा ।

परयोषां विशेषेण सिद्धमन्त्री प्रपूजयेत् ॥ ६५ ॥

मन्त्रसिद्ध साधक अथवा गुरु के द्वारा पूर्णाभिषिक्त साधक मन तथा शरीर से शक्ति का पूजन करे। अभिषिक्त साधक विशेषतः परस्त्री का ही पूजन करे ॥ ६५ ॥

एतानि कुलकर्माणि गुरुभिरुदितानि च ।

यावन्नैव सिद्धमन्त्री तावच्च स्वकुलं व्रजेत् ॥ ६६ ॥

॥ इति श्रीनिरुत्तरतन्त्रे पार्वतीशिवसंवादे अष्टमः पटलः ॥

गुरु के द्वारा उपदेश प्राप्त करके साधक को मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो जाने तक गुरु द्वारा निर्दिष्ट विधि से कुलाचार का आचरण करना चाहिये। यही है निजकुल ॥ ६६ ॥

। अष्टम पटल समाप्त ।

नवम पटलः

देव्युवाच--

देवदेव महादेव सर्वसिद्धीश्वर प्रभो ।

सिद्धमन्त्री भवेत् केन कर्मणा वद मे प्रभो ॥ १ ॥

देवी कहती हैं—हे देवाधिदेव! महादेव! सर्वसिद्धियों के ईश्वर! प्रभो! जिस कर्म का अनुष्ठान करने से साधक सिद्धमन्त्री हो जाता है, कृपया उसका उपदेश करें ॥ १ ॥

शिव उवाच--

आनीय मङ्गलं रम्यं कुलभक्तं कुलार्चने ।

स्वचक्रं विविधं कृत्वा शक्तिभाले लिखेत् ततः ॥ २ ॥

शिव कहते हैं—कुलपूजा में मंगलमय, सुन्दर कुलभक्त (जिसकी कुलकर्म में श्रद्धा हो) को बुलाकर अपने गुरु द्वारा उपदिष्ट विविध चक्रों को स्त्री के कपाल पर अंकित करे ॥ २ ॥

तत्र कामकलां देवीं वीरकोणे लिखेत् प्रिये ।

तन्मध्ये देवमन्त्रञ्च विहितं कामलाञ्छितम् ॥ ३ ॥

हे प्रिये! ईशान कोण में कामकला देवी का चित्र अंकित करके उसके मध्य में कामचिह्नित देवमन्त्र का अंकन करे ॥ ३ ॥

तत्र देवीं समावाह्य ध्यात्वा तत्र प्रपूजयेत् ।

ततो लक्षञ्च सञ्जप्य स्थिरधीः कुलसाधकः ॥ ४ ॥

उसमें (स्त्री में) देवी का आवाहन करके ध्यानोपरान्त पूजन करना चाहिये। तदनन्तर साधक स्थिर चित्त से मन्त्र का एक लाख जप करे ॥ ४ ॥

ततस्तच्छक्तिकर्णे च ऋषिच्छन्दःसमन्वितम् ।

मूलमन्त्रं त्रिधावृत्त्या कथयेद्वामकर्णके ॥ ५ ॥

तदनन्तर शक्ति (स्त्री) के बायें कान में ऋषिच्छंदःयुक्त (अपने गुरु से प्राप्त) मन्त्र का उच्चारण करे ॥ ५ ॥

अद्य प्रभृति शक्तिस्त्वं कुलदेवार्चनं चर ।

गुरोराज्ञां समादाय घृणालज्जाविवर्जिता ॥ ६ ॥

(फिर कहे) हे शक्ति! आज से तुम घृणा-लज्जा से रहित होकर कुल-देवता की अर्चना करो ॥ ६ ॥

शिवोक्तविधिना देव करिष्यामि कुलार्चनम् ।

त्राहि नाथ कुलाचारकामिनीकामनायक ॥ ७ ॥

अब शक्ति (स्त्री) यह कहे—"हे देव! मैं शिव द्वारा उपदिष्ट विधान से कुलपूजन करूँगी। हे नाथ! कुलाचार में कामिनी के कामनायक! मेरी रक्षा करो ॥ ७ ॥

सिद्धमन्त्रविधिः

(सिद्धमंत्र की विधि)

त्वत्पदाम्भोरुहच्छायां देहि मे कुलवर्त्मनि ।

गते च प्रथमे यामे स्वकुलं कुलिकोपरि ॥ ८ ॥

वामभागे समासीनं रक्तवस्त्रसमन्वितम् ।
नानागन्धसमायुक्तं नानारत्नेन भूषितम् ॥ ९ ॥
ललाटे मन्त्रमालिख्य मध्ये नामविदर्भितम् ।
ताम्बूलपूरितमुखस्ताम्बूलारुणलोचनः ॥ १० ॥

"कुलमार्ग में अपने चरण कमल की छाया दो।" रात्रि के प्रथम प्रहर के बीत जाने पर तांत्रिक अपने तन्त्रोक्त आचार का पालन करते हुये शक्ति को वामभाग में बैठाकर रक्तवस्त्र, नानागंध तथा रत्नों से सजाये। उसके कपाल पर मन्त्र लिखे। मध्य में उसका नाम लिखे। मुख को ताम्बूल से पूर्ण रखे। नेत्र भी ताम्बूल के समान अरुण वर्ण के हो जाते हैं ॥ १० ॥

कुलाकुलजपं कृत्वा ध्रुवमायाति तत्क्षणात् ।
एवमार्कणितो मन्त्री सिद्धमन्त्री कुलेश्वरि ॥ ११ ॥

हे कुलेश्वरी ! अब तांत्रिक अथवा अतांत्रिक, दोनों प्रकार के जप से तक्षण सिद्धि प्राप्त होने लगती है। इस प्रकार से मन्त्र जपने से साधक सिद्ध मंत्री हो जाता है ॥ ११ ॥

तावत् प्रयोगः कर्त्तव्यो यावत् सिद्धिर्न जायते ।
सिद्धमन्त्री कुलाचारे परयोषां प्रपूजयेत् ॥ १२ ॥

जब तक सिद्धि न प्राप्त हो तभी तक अनुष्ठान करना चाहिये। जो मन्त्रसिद्ध हैं, वे कुलाचार द्वारा परस्त्री की पूजा करें (जो मन्त्रसिद्ध नहीं हैं, उन्हें यह अधिकार नहीं है) ॥ १२ ॥

सिद्धमन्त्री श्मशाने च परयोषां प्रपूजयेत् ।
योषिदाकर्षणादेव कन्याञ्चैवावकर्षयेत् ॥ १३ ॥

मन्त्रसिद्ध व्यक्ति श्मशान में परस्त्री का पूजन करे। स्त्री का आकर्षण हो जाने पर वह देवकयाओं का भी आकर्षण हो सकता है ॥ १३ ॥

देवकन्याकर्षणेन देवतां कर्षयेत्तदा ।
आकर्षणप्रसादेन शिव एव प्रजायते ॥ १४ ॥

देवकन्या का आकर्षण सिद्ध हो जाने पर देवताओं का भी आकर्षण किया जा सकता है। आकर्षण के बल से साधक शिवतुल्य हो जाता है ॥ १४ ॥

आकर्षणं विना गच्छेत् तच्छक्तिं कौलिकीं पराम् ।
आकर्षणाद् भवेत् सिद्धिर्देवानामपि दुर्लभा ॥१५॥

बिना आकर्षण के ही कुलाचारसम्पन्ना स्त्री के निकट जाना चाहिये। आकर्षण सिद्धि से देवदुर्लभ सिद्धि मिलती है ॥१५॥

आकर्षणाञ्च निर्वाणं लभते नात्र संशयः ।
यावच्च पूजयेद्देवीं रजनीं कुलमन्दिरे ।
निर्वाणमपि चाप्यस्य तावदाविर्भवेत् पुनः ॥१६॥

यह निःसंदिग्ध है कि आकर्षण से निर्वाण की प्राप्ति हो जाती है। कुलमंदिर में रजनी देवी का पूजन करने से साधक का निर्वाण आविर्भूत हो जाता है ॥१६॥

प्रकृत्या जायते विश्वं प्रकृत्यौ च विलीयते ।
शैवानां वैष्णवानाञ्च सौराणाञ्च महेश्वरि ।
स्याच्च निर्वाणमेतेषां मातुराविर्भवन्ति हि ॥१७॥

प्रकृति से (आद्याशक्ति से) विश्व उत्पन्न होता है और प्रकृति में ही विलीन हो जाता है। हे महेश्वरी ! शैव, वैष्णव, सौर का निर्वाण जगन्माता से ही आविर्भूत होता है ॥१७॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
सर्वे मुक्तिप्रदा देवा निर्वाणं श्रेयसं विना ॥१८॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तथा सदाशिव प्रभृति मुक्तिप्रद देवता हैं, तथापि वे निर्वाण रूपी श्रेय प्रदान कर सकने में असमर्थ हैं ॥१८॥

निर्वाणं श्रेयसं देवि प्रकृत्या परिजायते ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रकृतिं परिपूजयेत् ॥१९॥

दे देवी ! निर्वाणप्रद श्रेयस् प्रकृति से ही उद्भूत होता है। इसलिये समस्त प्रयत्न द्वारा प्रकृति की पूजा करना चाहिये ॥१९॥

प्रकृतिर्या महामाया सैव प्रकृतिरूपिणी।
विकृतौ मन्त्रसिद्धिः स्यात् प्रकृतेः कुहकं ग्रहे ॥२०॥

जो महामाया प्रकृति हैं, वे ही हैं प्रकृतिरूपिणी स्त्री। (उनके साथ) विकृति होने पर भी मन्त्रसिद्धि मिल जाती है। विकृति भी प्रकृति की ही माया (इच्छा है) है। उनकी ही इच्छा से मन्त्रसिद्धि प्राप्त होती है ॥२०॥

निर्वाणं श्रेयसं नैव प्रकृतेः कुहकं विना।
लिखनं मन्त्रयन्त्राणां पूजनञ्च जपं प्रिये।
नियतं गुरुमार्गेण साधको निर्जने चरेत् ॥२१॥

प्रकृति की माया (इच्छा) बिना निर्वाण रूपी श्रेय कदापि नहीं मिलता। हे प्रिये ! सर्वदा निर्जन स्थान में मन्त्रलेखन, पूजन, जप आदि का गुरु द्वारा उपदिष्ट मार्ग से प्रयोग करना चाहिये ॥२१॥

(प्रकृतेर्माहात्म्यम्)

सङ्गहीनैः सदा कार्यं सङ्गेन नरकं व्रजेत्।
प्रकृतेर्योषिता वृन्दं विकृतिः पाञ्चभौतिकी ॥२२॥

(प्रकृति का माहात्म्य)

सर्वदा संगहीन होकर तांत्रिक अनुष्ठान करे। संग (स्त्रीसंग) करने से नरकगामी होना पड़ता है। स्त्रीसमूह महामाया की पाँचभौतिक विकृति हैं ॥२२॥

तच्चक्रं सिद्धिमूलञ्च मन्त्रयन्त्रविलेखनात्।
मन्त्रयन्त्रं विना देवि कुहकं विकृतेर्यदि ॥२३॥

मन्त्र-यन्त्रलेखन की तुलना में चक्र (स्त्रीसमूह) ही सिद्धि का मूल है। हे देवि ! यदि प्रकृति की विकृति की (स्त्री की) कृपा हो जाये, तब बिना मन्त्र-यन्त्र के ही सिद्धि मिल जाती है ॥२३॥

न गच्छेद् साधको वीरो न गच्छेन्नरकं व्रजेत्।
प्रकृतेः कुहकं यौनो यन्त्रे भाले च पार्वति ॥२४॥

वीर साधक स्त्रीगमन कदापि न करे, करने से नरक मिलता है। हे पार्वती ! योनि-यन्त्र तथा कपाल में प्रकृति की ही माया है ॥२४॥

विना संलिख्य मन्त्राणि दैन्यं गच्छेत् कुलसाधकः।
कामात् मोहतो वापि लोभाद्वा वरवर्णिनि ॥२५॥

हे वरवर्णिनी ! मन्त्र को न लिखने पर कुलसाधक को दीनता प्राप्त होती है। यदि साधक लोभवश, कामनावश अथवा मोहवश होकर प्रकृति के मायायन्त्र में (योनि में) पूजन करता है, तब उसे नरक ही मिलता है ॥२५॥

सिद्धिमूलं कुलेशानि विकृतेः कुहकं स्मृतम्।
तत्र सम्मोहयेत् सर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥२६॥

हे कुलेश्वरी ! महामाया प्रकृति की विकृति रूपा स्त्री की कृपा ही सिद्धि का मूल है। यह चराचर जगत् स्त्री द्वारा सम्मोहित हो जाता है ॥२६॥

विकृतेः कुहकापन्नो मन्त्रतन्त्रविशारदः।
तद्वरञ्च परिज्ञाप्य निवाणं श्रेयसं व्रजेत् ॥२७॥

मन्त्र-तन्त्र में निपुण भी स्त्रीरूपिणी विकृति द्वारा मोहग्रस्त हो जाता है। इसे विवेकबल से जान लेने पर निर्वाण रूप श्रेय मिल जाता है ॥२७॥

ब्रह्माणि न न वा विष्णौ न गणेशे षडानने।
प्रकृतेः कुहकं दानं न कुत्रापि प्रकाशितम् ॥२८॥

॥ इति श्रीनिरुत्तरतन्त्रे नवमः पटलः ॥

प्रकृतिरूपिणी महामाया के कृपादान को ब्रह्मा, विष्णु, गणेश अथवा कार्तिक के सम्मुख भी प्रकाशित नहीं करना चाहिये ॥२८॥

। नवम पटल समाप्त।

दशमः पटलः

श्रीदेव्युवाच

शक्तिर्नानाविधा प्रोक्ता संशयो जायते सदा ।
कुलीनं कीदृशीं देवीं ब्राह्मणः पूजयेत् सदा ॥१॥

श्री देवी कहती हैं—शक्ति नाना प्रकार की हैं, इसमें सदा संशय होता रहता है। ब्राह्मण किस प्रकार की कुलीन देवी (स्त्री) का पूजन करे? ॥१॥

श्रीशिव उवाच

सर्वजात्युद्भवा शक्तिर्योगिभिः पूज्यते सदा ।
यां यां पश्यति योगीन्द्रस्तां तामेव प्रपूजयेत् ॥२॥

श्रीशिव कहते हैं—योगीगण समस्त जातियों में उत्पन्न शक्ति का सर्वदा पूजन करते हैं। योगीश्रेष्ठ जिन-जिन शक्ति (स्त्री) का दर्शन करते हैं, उनका पूजन करते हैं ॥२॥

वीरशक्तिविशेषेण शृणुष्व वरवर्णिनि ।
पुरश्चर्याकृता वीराः प्रशस्ता वीरसाधने ॥३॥
पुरश्चर्याविहीनाश्चेन्न योज्याः कुलसाधने ।
योज्याश्चेत् सिद्धिहानिः स्याद् रौरवं नरकं व्रजेत् ॥४॥

हे वरवर्णिनी! विशेषतः वीरशक्ति की बात सुनो। पुरश्चरणकारी वीरभावापन्न शक्ति वीरभाव के साधन में उत्तम होती है। जो पुरश्चरणविहीन है; उस शक्ति को कुलसाधना में कभी भी प्रयुक्त नहीं करना चाहिये। नियुक्त करने पर सिद्धिहानि होती है और रौरव नरक प्राप्त होता है ॥३-४॥

वीरशक्तिं विना देवि न कुर्यात् कुलसाधनम् ।
तदभावे हीनजातौ प्रशस्ता वीरसाधने ॥५॥

हे देवी! वीरभावापन्न शक्ति के बिना तांत्रिक रहस्यपूजन कदापि नहीं करना चाहिये। जहाँ वीरभावापन्न शक्ति न मिले, वहाँ पर वीरभाव के साधन हेतु हीनजाति की शक्ति (स्त्री) विहित है ॥५॥

पञ्चचक्रे प्रशस्ता यास्ता शृणुष्व वरानने ।
चक्रं पञ्चविधं प्रोक्तं तत्र शक्तिं प्रपूजयेत् ॥६॥

हे वराहने! जो शक्ति पञ्चचक्र-साधना में प्रशस्त हैं, उन्हें सुनो। चक्र पाँच प्रकार के हैं। उन चक्रों में शक्तिपूजन करना चाहिये ॥६॥

राजचक्रं महाचक्रं देवचक्रं तृतीयकम् ।
वीरचक्रं चतुर्थञ्च पशुचक्रञ्च पञ्चमम् ॥७॥

प्रथम को राजचक्र, द्वितीय को महाचक्र, तृतीय को देवचक्र, चतुर्थ को वीरचक्र तथा पंचम को पशुचक्र कहा गया है ॥७॥

(चक्रवर्णनम्)

पञ्चचक्रे यजेद्दिव्यो वीरश्च कुलसुन्दरी ।
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च पञ्चचक्रे प्रपूजयेत् ॥८॥

(चक्र-वर्णन)

हे कुलसुन्दरी! दिव्य तथा वीर साधक पञ्चचक्र में पूजन करें। ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ भी पञ्चचक्र में पूजन करें ॥८॥

बलीयसी च देवेशि वीरचक्रे प्रपूजयेत् ।
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वीरचक्रेण पूजयेत् ॥९॥

हे देवेशी! वीरचक्र में बलयुक्त वीर ही पूजन करें। ब्रह्मचारी एवं गृहस्थ भी इसी में पूजन करें ॥९॥

योगिभिः पूज्यते देवि सर्वचक्रेषु कामिनी ।
माता च भगिनी चैव दुहिता च स्नुषा तथा ॥१०॥

हे देवी ! योगीगण सभी चक्रों में कामिनी का पूजन कर सकते हैं। माता, भागिनी, कन्या, पुत्रवधु तथा गुरुपत्नी की राजचक्र में पूजा करे ॥१०॥

गौडी वाप्यथवा माध्वी सुरा शस्ता कुलेश्वरि ।
शुद्धिश्चागोद्भवा शस्ता तृतीया वेदसम्भवा ॥११॥

हे कुलेश्वरी ! गौड़ी अथवा माध्वी सुरा उत्तम है। अगोत्पन्न शुद्धि प्रशस्त है और वेदसम्भूत सुरा भी प्रशस्त है ॥११॥

मुद्रा गोधूमजा शस्ता स्वयम्भूकुसुमं तथा ।
कुण्डगोलोद्भवं द्रव्यम् अनुकल्पं नियोजयेत् ॥१२॥

गेहूँ से बनी मुद्रा प्रशस्त है। अविवाहित कन्या का प्रथम रजरक्त (स्वयम्भू पुष्प) प्रशस्त है। पराये पुरुष से उत्पन्न कन्या का रजः (कुण्ड-पुष्प) प्रशस्त है। (पराया पुरुष अर्थात् जिस स्त्री का स्वामी जीवित हो, वह जब पराये पुरुष से संसर्ग करके कन्या उत्पन्न करे, उसे कुण्डोद्भवा कहते हैं।) गोलपुष्प (जब विधवा स्त्री पराये पुरुष से संसर्ग करके कन्या उत्पन्न करे, उस कन्या का प्रथम रजरक्त) का अनुकल्परूप में प्रयोग करना चाहिये ॥१२॥

रक्तचन्दनं तथा श्वेतमनुकल्पञ्च चन्दनम् ।
वस्त्रालङ्कारभूषाद्यैर्गन्धमाल्यानुलेपनम् ।
पूजयेत् परया भक्त्या देवताभ्यो निवेदयेत् ॥१३॥

उपरोक्त पुष्पों के अभाव में रक्तचन्दन तथा श्वेतचन्दन का अनुकल्प में प्रयोग करना चाहिये। वस्त्र, अलंकार, भूषणादि, गन्ध, माला, अनुलेपन इत्यादि द्वारा पूजन करे। इन्हें परम भक्ति से युक्त होकर देवता को अर्पित करे ॥१३॥

भक्ष्यं नानाविधं द्रव्यं नानावस्त्रसमन्वितम् ।
आसनं शुद्धिसंयुक्तं ताभ्यो दद्यात् पुनः पुनः ॥१४॥

नाना प्रकार वस्त्र से समन्वित (पोषाक), नानाविधि भक्ष्य द्रव्य, शुद्ध आसन शक्तिगण (स्त्रीगण) को पुनः पुन :प्रदान करे ॥१४॥

प्रणम्य प्रजपेन्मन्त्रं दृष्ट्वा ताश्च सहस्रकम् ।
अङ्गं नैव स्पृशेत्तासां स्पृशेच्च नरकं व्रजेत् ॥१५॥

उन्हें देखते हुये प्रणाम करके १००० जप करें। उनके अंगों का स्पर्श नहीं करना चाहिये, अन्यथा नरक प्राप्त होता है ॥१५॥

मधुमत्ताः सदा तास्तु न स्वपन्ति सुसम्पदः ।
तत्तदैव भवेत् सर्वं सत्यं सत्यं न संशयः ।

(भावना करे) वे सर्वदा मधु (मद्य) द्वारा मत्त हैं, वे निद्रित नहीं होतीं। वे सुसम्पदायुक्त हैं। इस प्रकार के शुद्ध भाव से उनका पूजन करने पर समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। यह सत्य है एवं निःसंदिग्ध है।

षष्टिवर्षसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते ॥१६॥

ऐसा साधक साठ हजार वर्षों तक ब्रह्मलोक में पूज्य हो जाता है ॥१६॥

माता भगिनी स्नुषा कन्यावीरपत्नी कुलेश्वरि ।
महाचक्रे यजेदेताः पञ्चशक्ति पुनः पुनः ॥१७॥

हे कुलेश्वरी ! माता, बहन, पुत्रवधू, कन्या तथा वीर साधक की पत्नी का महाचक्र में पुनः-पुनः पूजन करना चाहिये ॥१७॥

द्रव्यदाने तु सम्पूज्य न शक्तौ शिवयोजनम् ।
योजयेत् सिद्धिहानिः स्याद् रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ १८ ॥

द्रव्यदान में शक्ति का पूजन करना चाहिये, परन्तु शक्ति (स्त्री) से शिव-संयोग कदापि न करे। अन्यथा सिद्धिहानि के साथ-साथ रौरव नरक प्राप्त होता है। (शिवसंयोग = शक्ति के साथ नायिका-नायक व्यवहार) ॥ १८ ॥

महाव्याधिर्भवेद्देविः धनहानिः प्रजायते ।
सदैव दुःखमाप्नोति सर्वं तस्य विनश्यति ॥ १९ ॥

ऐसा करने से महाव्याधि, धनहानि, सर्वदा दुःख की स्थिति आती है, जिससे सब कुछ नष्ट हो जाता है ॥ १९ ॥

आद्यञ्च गौडिकं प्रोक्तं द्वितीयं कुक्कुटोद्भवम् ।
तृतीयं रोहितं प्रोक्तं चतुर्थं माषसम्भवम् ॥ २० ॥
करवीरोद्भवं पुष्पं चन्दनं रक्तचन्दनम् ।
पूजयेत् परया भक्त्या शिवलोके महीयते ॥ २१ ॥

प्रथम है गौड़िक (एक प्रकार का मद्य), द्वितीय है मुर्गे से उत्पन्न द्रव्य, तृतीय है रोहू मछली, चतुर्थ है उर्द से बना द्रव्य, करवीर वृक्ष से उत्पन्न पुष्प, चन्दनों में रक्तचन्दन; इन सब द्रव्यों के द्वारा भक्ति से युक्त होकर शक्ति (स्त्री) का पूजन करे। ऐसा करने वाला साधक शिवलोक में पूज्य हो जाता है ॥ २०-२१ ॥

षष्टिवर्षसहस्राणि तत्र देवीं प्रपूजयेत् ।
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्याममायां च कुजेऽहनि ।
राज चक्रे महाचक्रे भक्त्या शक्तीः प्रपूजयेत् ॥ २२ ॥

वह शिवलोक में ६०००० वर्ष तक देवी की पूजा करे। अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, मंगल को राजचक्र में भक्तिपूर्वक पूजन करे ॥ २२ ॥

शुक्लपक्षे गुरोर्वारे चतुर्थी सप्तमीतिथौ ।
महाचक्रे यजेद्भक्त्या सर्वकामार्थसिद्धये ॥ २३ ॥

शुक्लपक्ष के बृहस्पतिवार की चतुर्थी अथवा सप्तमी (इसी पक्ष के बृहस्पति की) को समस्त कामनाओं की सिद्धि हेतु महाचक्र में भक्तियुक्त हो पूजन करे ॥ २३ ॥

देवचक्रं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व वरवर्णिनि ।
विदग्धाः सर्वजातीनां पञ्चकन्याः प्रकीर्त्तिताः ॥ २४ ॥

हे वरवर्णिनी ! देवचक्र का वर्णन करता हूँ, सुनो, समस्त जाति की विदग्धा (रतिज्ञानचतुरा) पञ्चकन्या कही गई है ॥ २४ ॥

गौडिकं फलजं रम्यं द्वितीयं पक्षिसम्भवम् ।
तृतीयं शालमत्स्यञ्च चतुर्थं धान्यसम्भवम् ॥ २५ ॥
सुगन्धि गन्धपुष्पञ्च देवचक्रे नियोजयेत् ।
देवचक्रे यजेच्छक्तिं देवलोके महीयते ॥ २६ ॥

अंगूर आदि रम्यफलोत्पन्न मद्य, पक्षिजात द्रव्य (मांस), शाल मछली, घृताक्त अन्नरूप मुद्रा, सुगन्धि, पुष्प आदि से देवचक्रमें शक्ति पूजन करना चाहिये। इससे देवलोक में महिमायुक्त स्थिति प्राप्त होती है ॥ २५-२६ ॥

षष्टिवर्षसहस्राणि देवकन्याः प्रपूजयेत् ।
पञ्चकन्या यजेच्चक्रे नातिरिक्तां कदाचन ॥ २७ ॥

वहाँ ६०००० वर्ष तक देवकन्याओं का पूजन करे। इस देवचक्र में पंच-कन्याओं का पूजन करे। इसके अतिरिक्त कन्यापूजन न करे ॥ २७ ॥

लोभाद्वा कामतो वापि छलाद्वा वरवर्णिनि ।
यदि स्यात् सङ्गमस्तासां रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ २८ ॥

हे सुन्दरी ! यदि लोभवशात्, कामवशात् या छल के द्वारा साधक पञ्च-कन्याओं के साथ संगम (इस पंचचक्र में) करता है, उस स्थिति में रौरव नरक प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ।
पितृभूमिं समागम्य वीरचक्रे प्रपूज्येत् ।
दिव्यवीरान्वितो मन्त्री यजेच्छक्तिं बलीयसीम् ॥ २९ ॥

शुक्ल तथा कृष्ण पक्ष की अष्टमी या चतुर्दशी तिथि को दिव्यभावयुक्त मन्त्र का साधक श्मशान में वीरचक्र में बलवत्तरा शक्ति का पूजन करे ॥२९॥

श्रीदेव्युवाच—

मात्रादयः पञ्चकन्या यतीनाञ्च कथं प्रभो ॥ ३० ॥

श्रीदेवी कहती हैं—हे प्रभो ! सन्यासियों की साधना में पञ्चकन्या किस प्रकार की हैं ? ॥ ३० ॥

श्रीशिव उवाच

मात्रादयः पञ्चकन्यां हीनजातायते प्रिये।
चतुर्वर्णोद्भवां वेश्यां विशेषेण बलीयसीम् ॥ ३१ ॥

श्रीशिव कहते हैं—हे प्रिये ! सन्यासी के लिये माता, भगिनी प्रभृति पंचकन्या हीन जाति के तुल्य हैं। चतुर्वर्ण में उत्पन्न वेश्या ही विशेषतः सन्यासी के साधनार्थ उपयुक्त हैं। (तांत्रिक साधना के लिये उपयुक्त कन्या को तांत्रिक भाषा में वेश्या कहा जाता है) ॥ ३१ ॥

भूमीन्द्रकन्यका माता दुहिता रजकीसुता।
श्वपची च स्वसा ज्ञेया कापाली च स्नुषा स्मृता।
योगिनी निजशक्तिः स्यात् पञ्चकन्याः प्रकीर्त्तिताः ॥ ३२ ॥

राजकन्या ही माता है, धोबी की कन्या लडकी के समान, चाण्डालकन्या बहन के समान, कापालिक की कन्या पुत्रवधू के समान होती हैं। योगिनी योगसाधिका ही अपनी स्त्रीशक्ति कही गयी हैं। ये ही पञ्चकन्या हैं ॥ ३२ ॥

गुरोः समीपे कर्त्तव्यमथवा भ्रातृभिः सह।
सिद्धमन्त्री भवेद्वीरो न वीरो मद्यपानतः ॥ ३३ ॥

गुरु के पास चक्रसाधन करे अथवा गुरुभाइयों के साथ साधना करे। मन्त्रसिद्ध वीर ही वीरभाव का साधक है। मद्यपानकर्त्ता वीर नहीं होता ॥ ३३ ॥

अभिषिक्तो भवेद्वीरो अभिषिक्ता च कौलिकी।
एवञ्च वीरशक्तिञ्च वीरचक्रे नियोजयेत् ॥ ३४ ॥

अभिषिक्त ही वीर है, अभिषिक्ता स्त्री ही कौलिकी है। इस प्रकार से वीरचक्र में उपर्युक्त वीर शक्ति को नियुक्त करना चाहिये ॥ ३४ ॥

क्रमसङ्केतकञ्चैव पूजासङ्केतमेव च।
मन्त्रसङ्केतकञ्चैव यन्त्रसङ्केतकं तथा ॥ ३५ ॥

लिखिनं मन्त्रयन्त्राणां सङ्केतं गुरुमार्गतः।
सङ्केतज्ञं विना वीरं यदि चक्रे नियोजयेत्।
निष्फलं पूजनं देवि दुःखं तस्य पदे पदे ॥ ३६ ॥

साधना क्रम के संकेत, पूजासंकेत, मन्त्रसंकेत तथा यन्त्रसंकेत को गुरु के द्वारा बताये गये मार्ग से मन्त्र यन्त्रलेखन में प्रयोग करे। अर्थात् गुरूपदिष्ट विधि से उन्हें वीरचक्र में लिखे। इन सब संकेतों को जानने वाले वीर साधक के अतिरिक्त किसी अनभिज्ञ व्यक्ति को चक्रसाधना में नियुक्त करने से अनुष्ठानकर्त्ता (नियोगकारी) की पूजा निष्फल होती है। नियुक्त करने वाले को प्रति पद पर दुःखभागी होना पड़ता है ॥३५-३६॥

सङ्केतहीनो यो वीरो नाभिषेकी गुरुक्रमात्।
कुलभ्रष्टः स पापिष्ठस्तं त्यजेद्वीरचक्रके ॥३७॥

जो वीर संकेतज्ञानशून्य है और गुरुक्रमानुसार अभिषेक से रहित है, वह पापिष्ठ एवं कुलभ्रष्ट है (तांत्रिक विधान से भ्रष्ट है)। वीरचक्र में उसका परित्याग कर देना चाहिये ॥३७॥

नाभिषिक्तो वसेच्चक्रे नाभिषिक्ता च कौलिकी।
वसेच्च रौरवं याति सत्यं सत्यं न संशयः ॥३८॥

जो अभिषिक्त नहीं है, वह चक्र में बैठने योग्य नहीं है। अनभिषिक्ता स्त्री कदापि कौलिकी नहीं है। यदि अनभिषिक्त चक्र में बैठता है, तब वह निश्चय ही रौरव नरकगमन करता है। यह सत्य तथा निःसंदिग्ध है ॥३८॥

एवं क्रमं विना देवि वीरचक्रं वसेद् यदि।
सिद्धिहानिं सिद्धिहानिं रौरवं नरकं व्रजेत् ॥३९॥

हे देवी ! इस क्रम के बिना यदि साधक वीरचक्र में साधनार्थ उपस्थित होता है, तब उसकी निश्चय ही सिद्धिहानि होती है और वह रौरव नरक का भागी हो जाता है ॥३९॥

सर्वमद्यं सर्वशुद्धिं सर्वमीनं कुलेश्वरि ।
सर्वमुद्रां सर्वपुष्पं स्वयम्भूकुसुमं तथा ।
कुण्डगोलोद्‌भवं द्रव्यं नानारससमन्वितम् ।
प्रपद्यात् साधकश्रेष्ठो वीरचक्रं पुनः पुनः ।।४०।।

हे कुलेश्वरी ! साधकश्रेष्ठ वीरचक्र में सभी प्रकार का मद्य, समस्त शुद्धि (मद्य-मांस-मुद्रा-मत्स्य आदि से मिश्रित द्रव्य), समस्त पुष्प एवं स्वयंम्भू-पुष्प (प्रथम बार रजस्वला कन्या का रजरक्त), कुण्डपुष्प, गोलपुष्प (दशम पटल के श्लोक १२ में कुण्डपुष्प तथा गोलपुष्प की व्याख्या देखें) तथा नाना रसयुक्त पदार्थ पुनः-पुनः प्रदान करे ।।४०।।

स्वशक्तिं पूजयेत्तत्र तदुच्छिष्टं पिबेत् प्रिये ।
चर्व्यञ्च ज्येष्ठतो ग्राह्यं कनिष्ठाय निवेदयेत् ।।४१।।

हे प्रिये ! उस वीरचक्र में अपनी शक्ति (स्त्री) का पूजन करे । उसके जूठन का पान करे । चबाने वाला द्रव्य बड़े से ग्रहण करके छोटे को देना चाहिये ।।४१।।

एकासने न भुञ्जीत भोजनं नैकभाजने ।
परस्परमुखस्पर्शं न कर्त्तव्यं कदाचन ।।४२।।

एक ही आसन पर बैठकर भोजन न करे, एकपात्र में कई लोग मिलकर भोजन न करे । एक-दूसरे का मुखस्पर्श कदापि न करे ।।४२।।

एवं क्रमेण देवेशि वीरचक्रं समाचरेत् ।
आनीय हीनजां देवीं शक्तिमन्त्रेण शोधयेत् ।।४३।।
संशोध्य हीनजां पूजा वीरशक्तिं निवेदयेत् ।
मधुसक्ताय वीराय यो दद्याद्धीनजां सुताम् ।
वक्त्रकोटिसहस्रेण तस्य पुण्यं न गद्यते ।।४४।।

हे देवेशी ! इस प्रकार से वीरचक्र का अनुष्ठान करे । हीनजातीय (देवी) स्त्री का शक्तिमन्त्र से शोधन करे । शोधन करके पूजा के समय इस हीन जाति की देवी (स्त्री) को अपनी शक्ति को निवेदित करना चाहिये । जो व्यक्ति मधुसक्त (मद्यपान के उपरान्त जो वीर साधक इष्टचिन्तन में निमग्न है) वीर साधक को हीनजातीया कन्या प्रदान करता है, उसके पुण्य को सहस्र-कोटि मुख के द्वारा भी वर्णित नहीं किया जा सकता ।।४३-४४।।

वीराय शक्तिदानन्तु वीरचक्रं विधीयते ।
चक्रभिन्ने चरेद्दानं रौरवं नरकं व्रजेत् ।।४५।।

वीरचक्र में वीर साधक को शक्ति प्रदान करने का विधान है, किन्तु चक्र के अतिरिक्त यदि किसी स्थान पर हीनजातीय कन्यादान की जाती है, तब दानकारी रौरव नरक में जाता है ।।४५।।

घातयेत् गोपयेद् वापि न निन्देन्न निरीक्षयेत् ।
कामं क्रोधञ्च मात्सर्यं विकारं लोभमेव च ।
कुत्सा निन्दा दुरालापं गोपयेदष्टकं प्रिये ।।४६।।

वीरचक्र में शक्ति को प्राप्त करे, गोपन करे, किन्तु उसकी निन्दा न करे, उसकी ओर न देखे । हे प्रिये ! काम-क्रोध-मात्सर्य, शरीर तथा मन का विकार, लोभ, अन्य के दोष कहना, निन्दा (एक-दूसरे की निन्दा) तथा दुष्टतापूर्ण वार्ता, इन आठ को सदा गोपित करना चाहिये ।।४६।।

मन्त्रं मुद्रामक्षमालां योनिञ्च वीरसङ्गमम् ।
मण्डलञ्च घटं पीठं सिद्धिद्रव्याणि गोपयेत् ।।४७।।

मन्त्र, मुद्रा, जप की माला, योनि, वीरसंगम, मण्डल, घट, पीठ तथा सिद्धिद्रव्य को गोपन करे अर्थात् गुप्त करे ।।४७।।

पण्डितं वीरसन्तानं क्षेत्रं देवीञ्च योगिनीम् ।
कुलाचारं गुरुदूतीं मनसापि न निन्दयेत् ।।४८।।

पण्डित, साधक की सन्तान, साधनस्थल, योगिनी देवी, तन्त्रोक्त रहस्य-पूजन, गुरुदूती की मन से भी निन्दा न करे ।।४८।।

मातृयोनिं पशुक्रीडा नग्नां स्त्रीमुन्नतस्तनीम् ।
कान्तेन क्षोभितां कान्तां कामतो नावलोकयेत् ।।४९।।

माता की योनि, पशुओं की रतिक्रीड़ा, उन्नत स्तनों वाली नग्ना स्त्री, स्वामी द्वारा क्षोभित स्त्री का कामभाव से कदापि दर्शन न करे ।।४९।।

देवीं गुरुं सुधां विद्यां श्रेष्ठां शक्तिं क्रियात्मजाम् ।
योगिनीं भैरवीतत्त्वं अष्टतत्त्वं प्रपूजयेत् ।।५०।।

देवी (स्त्रीरूपिणी शक्ति), गुरु, सुधा, विद्या (मन्त्र), क्रिया द्वारा उत्पन्न, श्रेष्ठशक्ति, योगिनी तथा भैरवी तत्त्व—इन आठ तत्त्वों का पूजन करे ॥५०॥

विमाता दुहिता भगिनी स्नुषा पत्नी च पञ्चमी ।
पशुचक्रे यजेद्धीमान् पशुवत्तोषणं चरेत् ॥५१॥

बुद्धिमान् व्यक्ति पशुचक्र में विमाता, कन्या, बहन, पुत्रवधू तथा अपनी पत्नी का पूजन करके उन्हें पशुवत् तुष्ट करे (पशुवत् अर्थात् पश्वाचार से) ॥५१॥

सिन्दूरागुरुकस्तूरीं नानापुष्पाणि सुन्दरि ।
गन्धपुष्पञ्च माल्यञ्च वस्त्राद्याभरणानि च ॥५२॥
एतद्‌द्रव्यगणं यस्तु भक्त्या ताभ्यो निवेदयेत् ।
षष्टिवर्षसहस्त्राणि क्षितौ राजा भवेद् ध्रुवम् ॥५३॥

हे सुन्दरी ! गन्ध, पुष्प, माला, वस्त्र, आभरण, सिन्दूर, अगरु, कस्तूरी, नाना प्रकार के पुष्प, नाना प्रकार के भक्ष्यद्रव्य, नाना प्रकार के फल से जो साधक श्लोक ५१ में वर्णित पंच प्रकार की देवी का भक्ति पूर्वक अर्चन करता है, वह ६०००० वर्षों के लिये पृथ्वी का राजा हो जाता है। यह निश्चित है ॥५३॥

वीरचक्रे मन्त्रसिद्धिर्भवत्येव न संशयः ।
अमावस्यां चतुर्द्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ।
श्मशानेन गतेनार्चेत् सूचितं न प्रकाशितम् ॥५४॥

॥ इति श्रीनिरुत्तरतंन्त्रे पार्वतीशिवसंवादे दशमः पटलः ॥

पूर्वोक्त पशुचक्र में द्रव्य देने वाले व्यक्ति को वीरचक्र में मन्त्र सिद्धि मिल जाती है। यह निःसंदिग्ध है। वी रसाधक अमावस्या या दोनों पक्षों की चतुर्दशी में श्मशान में जाकर पूजन करे। यह समस्त प्रक्रिया गुप्त रखनी चाहिये। अतः यहां संकेत में कहा गया है ॥५४॥

॥ दशम पटल समाप्त ॥

एकादशः पटलः

श्री देव्युवाच

योगिनां साधनं देव सूचितं न प्रकाशितम् ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कृपया कथय प्रभो ॥१॥

श्रीदेवी कहती हैं– योगीगण के साधन के विषय में आपने सूचनामात्र दिया, परन्तु उसे स्पष्ट रूप से प्रकाशित नहीं किया। हे प्रभो ! मैं उसे स्पष्टतः सुनने की इच्छुक हूँ। कृपया कहिये ॥१॥

श्री शिव उवाच

आत्मनो ज्ञानमात्रेण तत्वज्ञान भवेत् प्रिये ।
तत्वज्ञानी भवेद् योगी स योगी त्रिविधः स्मृतः ॥२॥

श्री शिव कहते हैं—हे प्रिये ! आत्मा के ज्ञानमात्र से ही तत्वज्ञान का उदय हो जाता है। तत्वज्ञानी ही योगी होते हैं। योगी तीन प्रकार के कहे गये हैं ॥२॥

निरालम्बश्च सालम्बो भक्तश्च परमेश्वरि ।
भक्तोऽपि वीरभावेन साधयेत् कुलसाधनम् ॥३॥

हे परमेश्वरी ! निरालम्ब, सालम्ब एवं भक्त, ये योगी के तीन प्रकार हैं। भक्त को भी वीरभाव से साधना करनी चाहिये ॥३॥

शक्तिमात्रं यजेद् योगी भक्तो योगपरायणः ।
आत्मन्येवात्मना योगं शक्तौ वा शिवयोजनम् ॥४॥

योगपरायण भक्तयोगी शक्तिमात्र का पूजन करें। आत्मा से आत्मा का योग अथवा शक्ति से शिवसंयोग करें ॥४॥

अभिषेकेन देवेशि भैरवो जायते मुखे ।
अवधूतो भवेद्वीरो दिव्यश्च कुलसुन्दरि ॥५॥

हे देवेशी ! अभिषेक के द्वारा साधक पृथ्वी पर ही भैरव हो जाते हैं। हे कुलसुन्दरी। अभिषेक से वीर तथा दिव्यसाधक को अवधूत पद प्राप्त होता है ॥५॥

श्मशानागमनिष्ठश्च कुलयोषित्परायणः ।
कुलशास्त्रार्थसंवक्ता बलिदानरतः सदा ॥६॥
निर्द्वन्द्वो निरहङ्कारो निर्लोभो निर्भयः शुचिः ।
गुरूदेवरतः शान्तो घृणालज्जाविवर्जितः ॥७॥

अवधूत को श्मशान साधन निष्ठ, कुलस्त्रीपरायण, कुलशास्त्रोपदेष्टा, सर्वदा बलिदान में निरत, शीत-ग्रीष्मादि द्वन्द्व से मुक्त, निरहंकार, निर्लोभ, निर्भय, शुद्ध, गुरुदेव में भक्तियुक्त, शान्त तथा घृणा एवं लज्जारहित होना चाहिये ॥६॥-७॥

(योगिनां साधनम्)

रक्तचन्दनलिप्ताङ्गों रक्तकौपीनभूषणः ।
उदारचरितः सर्वत्र वैष्णवाचारतत्परः ॥८॥

(योगीगण का साधन)

योगी अंग में रक्त चन्दन लेप करते हैं। उनका भूषण है रक्तवर्ण कौपीन। वे सदा उदारचित्त तथा वैष्णवाचार परायण रहते हैं ॥८॥

कुलाचाररतो वीरः पण्डितः कुलवर्त्मनां ।
कुलसङ्केतसंवेत्ता कुलशास्त्रविशारदः ॥९॥

वे कुलाचार में रत, वीरभावापन्न, कुलमार्ग पण्डित, कुलाचार संकेतज्ञ, कुलशास्त्र में विशेष ज्ञान सम्पन्न होते हैं ॥९॥

महाबलो महाबुद्धि र्महासाहसिकः शुचिः ।
नित्यकर्माणि निष्णान्तो द्वंद्वहिंसाविवर्जितः ॥१०॥

वे महाबली, महाबुद्धिमान, महासाहसी, शुद्ध, नित्यकर्म में निष्ठावान, मानापमान आदि द्वन्द्व से रहित और हिंसाशून्य होते हैं ॥१०॥

परनिन्दासहिष्णुः स्यादुपकाररतः सदा ।
वीरमासनमासीनः पितृभूमिगतः शुचिः ॥११॥

पराई निन्दा न करना, सदा दूसरों के उपकार में लगे रहना, पवित्र रहना श्मशान में वीरासन पर स्थित रहना (यह योगी का कर्त्तव्य है) ॥११॥

सर्वदानन्दहृदयः कुमारीपूजने रतः ।
एवं यदि भवेद् वीरस्तदैव हीनजां यजेत् ॥१२॥

सर्वदा हृदय के आनन्द से पूर्ण रहना, कुमारीपूजन में लगे रहना, यदि यह सब गुण (जो श्लोक ८ से १२ तक में वर्णित हैं) वीर साधक में हैं, तब वह हीन जतीया शक्ति का पूजन कर सकते हैं ॥१२॥

दिव्योऽपि वीरभावेन साधयेत् कुलसाधनम् ।
कुलं च सर्वजातीनां पूजनीयं कुलार्चने ॥१३॥

दिव्यभाव के साधक भी वीरभाव की कुल साधना कर सकते हैं। इस पूजन में सभी जातियों की शक्ति (स्त्री) पूज्य है ॥१३॥

सिद्धविद्या विशेषेण सिद्धिदा कुलपूजने ।
श्मशाने निर्जने रम्ये त्रिप्रान्ते शून्यमण्डले ॥१४॥
ग्रामे पातालके वापि साधयेत् कुलसाधनम् ।
बलिदानं बिना पानं श्मशानगमनं बिना ॥१५॥
जपपूजादिकं कर्म त्वभिचाराय कल्प्यते ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन बलिदानं समाचरेत् ॥१६॥

कुलपूजन में काली, तारा आदि सिद्धविद्यायें ही विशेषतः सिद्धि प्रदान करती हैं। श्मशान, निर्जन रम्यप्रदेश, तीन प्रान्तर युक्त (त्रिप्रान्तर), स्थल, शून्य (शून्य स्थान में), मण्डल, ग्राम, मृत्तिका के नीचे वने गढ़े में, कुल साधना करे। बलिदान के बिना मद्यादि पान और श्मशान गये बिना जप-पूजा आदि कर्म सब कुछ अभिचारकृत्य के समान दुःख देने वाला हो जाता है। अतः समस्त प्रयत्नों के द्वारा बलिदान का अनुष्ठान करना चाहिये। ॥१४-१६॥

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य तत्र भावे ततः परम् ।
ततो विकटदंष्ट्रं च परपक्षं मोहयद्वयम् ॥१७॥
या मां हिंसितुमुद्यता च योगिनी च हर हर
हुं फट् ततः परम् ॥१८॥
वन्हिजाया ततो देवि परविद्यां ततः परम् ।
आकर्षय ततो देवि छेदक कपालिने ॥१९॥
गृह्णद्वय वह्निजाया अनेन बलिमाहरेत् ।
अनेन बलिदानन्तु कुलकर्मसुसिद्धये ॥२०॥

पहले प्रणव का चिन्तन करके "ॐ विकटदंष्ट्रं परपक्षं मोहय मोहय खादय खादय या मां हिंसितुमुद्यता च योगिनी च हर हर हुं फट् स्वाहा परविद्यां आकर्षय देवि छेदय कपालिने गृह्ण गृह्ण स्वाहा" कहकर बलि का आहरण करे । कुलकर्म हेतु यह बलिदान मन्त्र है ॥१७-२०॥

त्रिपान्तरे श्मशाने वा बलिं दद्याज्जपेन्मनूम् ।
महात्रिप्रान्तरे दत्त्वा किं न सिध्यति भूतले ।
बलिदानं बिना किञ्चित् साधनं नैव साधयेत् ॥२१॥

(साधिकायाः प्रकारभेदः)

श्रीदेव्युवाच—
साधकः कथितो देव साधिका कीदृशी प्रभो ॥२२॥

(साधिकाओं का भेद)

श्री देवी कहती हैं—हे प्रभो आपने साधकों के सम्बन्ध में कहा । अब साधिकाओं के सम्बन्ध में कहिये कि वे किस प्रकार की होती हैं ? ॥२२॥

निर्लोभा कामनापीना निर्लज्जा दम्भवर्जिता ।
शिवसङ्गता साध्वी स्वेच्छया विपरीतगः ॥२३॥
चतुर्वर्णोद्भवा रम्भा प्रशस्ता कुलपूजने ।
चतुर्वर्णोद्भावानाञ्च पुरश्चर्या विधीयते ॥२४॥

श्री शिव कहते हैं—निर्लोभा, कामनाशून्या, लज्जारहिता, गर्व से रहिता, शिवसंग करने वाली साध्वी, अपनी इच्छा से विपरीत गामिनी (निवृत्ति-गामिनी), गुणयुक्ता, चारों वर्णों में उत्पन्न स्त्री को रम्भा कहा गया है । कुलपूजन में ऐसी ही स्त्री उत्तम है । चारवर्णो में उत्पन्न स्त्री का पुरश्चरण में विधान है ॥२३-२४॥

वर्णसङ्करतो जाता हीनजा परिकीर्तिता ।
लज्जालाञ्छितभाला या सा साक्षाद् भुवनेश्वरी ॥२५॥

वर्णसंकर कुलोत्पन्न स्त्री को हीनजा कहा गया है । यदि हीनजा लज्जान्विता है, जिसके कपाल पर लज्जा चिह्न अथवा "ह्रीं" बीज का चिह्न है, तब ऐसी स्त्री को साक्षात् भुवनेश्वरी कहा जाता है ॥ २५ ॥

कुलपूजन में नाना जातियों में उत्पन्न स्त्री के लिये वही दीक्षा है । ब्राह्मणगण हीनजातीय देवी (स्त्री) की प्रत्यक्ष पूजा करें अथवा मन ही मन पूजन करें ॥ २६ ॥

नानाजात्युद्भावनाञ्च सा दीक्षा कुलपूजने ।
ब्राह्मणो हीनजां देवीं मनसा वा प्रपूजयेत् ॥ २६ ॥
अज्ञात्वा कौलिकीं देवीं पशुवत् परिपूजयेत् ।
पशुवत् पूजयेद्वीरो दीक्षितां वाप्यदीक्षिताम् ॥ २७ ॥

कौलिकी देवी को (तन्त्रोपादिष्ट विधि से दीक्षित स्त्री को) न पहचानने पर उसकी पशुवत् पूजा करे । कौलसाधक दीक्षिता अथवा अदीक्षिता शक्ति का पूजन पशुवत् (पशुचक्र) में करे ॥ २७ ॥

शक्तिमात्रं यजेद्वीरः प्राप्तयोगमनाः स्मरेत् ।
अष्टोत्तरशतं देवि तद्योगं सुरते जपेत् ॥ २८ ॥

वीरसाधक योगयुक्त मन से शक्तिमात्र का पूजन करे । स्मरण करे । हे देवि ! मन में उसका स्मरण करते हुये १०८ जप करे ॥ २८ ॥

प्रणम्य मनसा देवीं चुम्बनं मनसा स्मरेत् ।
सुन्दरीं नागरीं दृष्ट्वा एवं सञ्चिन्तयेन्नरः ॥ २९ ॥

वीरसाधक योगयुक्त मन से शक्तिमात्र का पूजन करे। उनको मन ही मन प्रणाम करके मन से ही उनका चुम्बन करे। साधक मनुष्यरूपिणी सुन्दरी विदग्धा रमणी को देखकर इसी प्रकार का चिन्तन करे ॥ २९ ॥

स एव कालिकापुत्रः सदाशिव इहापरः।
हट्टे वा मन्दिरे रम्ये त्रिपान्ते पथि चान्तरे ॥ ३० ॥
जपं समर्प्य तां चुम्ब्य प्रणम्य च पुनः पुनः।
भक्ष्यद्रव्यं ततस्ताभ्यो भक्त्या च विनिवेदयेत् ॥ ३२ ॥
दृष्ट्वा च सुन्दरीं रम्यां मनसा च प्रपूजयेत्।
तद्योगं मनसा स्मृत्वा जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥ ३२ ॥

जो इस प्रकार का चिन्तन करते हैं, वे ही कालिका पुत्र हैं। वे इस लोक में दूसरे सदाशिव के समान हैं। बाजार, सुन्दर मंदिर, तीन प्रान्तरों के संयोग स्थल में, पथ, निर्जन में सुन्दरी रम्य स्त्री को देखकर उसका मन ही मन पूजन करे। मन ही मन उससे योग का स्मरण करके १०८ बार जप करे। जप समर्पण करके उसका मानसिक चुम्बन लेकर उसे पुनः पुनः प्रणाम करके उसे भक्तिपूर्वक भक्ष्य द्रव्य निवेदित करे ॥ ३०-३२ ॥

यदि द्रव्याणि गृह्णन्ति तदा सिद्धिर्भवेत् ध्रुवम्।
यदि भाग्यवशेनैव हीनजां कौलिकीं पराम्।
पूजयेन्मनसा वाचा तत्र तत्त्वं विचिन्तयेत् ॥ ३३ ॥

यदि वह शक्ति (स्त्री) भक्ष्य द्रव्य ग्रहण कर ले, तब सिद्धि निश्चित रूप से प्राप्त हो जाती है। यदि भाग्य से हीन जातीया श्रेष्ठा कौलिकी (अभिषिक्ता स्त्री की) की मन ही मन पूजा की जाये, उस स्थिति में मन, वाणी से पूजा करे, उस स्थिनि में पूजा में तत्व चिन्तन करे ॥ ३३ ॥

अष्टोत्तरशतं जप्त्वा चुम्बयित्वा पुनः पुनः।
पुनस्तत्त्वं चरेत्तत्र जपसंख्या रसातलम् ॥ ३४ ॥

१०८ जप करके पुनः पुनः चुम्बन करके पुनः तत्व चिन्तन करे। इस तत्वचिन्तन में जपसंख्या नहीं रहती ॥ ३४ ॥

ततस्तु पूर्ववत् कृत्वा पुरश्चरणमुच्चरेत्।
हीनजाते तु संयुक्ता दीक्षिता सैव सर्वदा ॥ ३५ ॥

तदनन्तर पुनः मन ही मन प्रणाम एवं चुम्बन करके पुनः तत्व चिन्तन करे। हीनजातीय व्यक्ति से संयुक्ता स्त्री सर्वदा दीक्षिता है ॥ ३५ ॥

शाङ्करी शक्तिका वापि वैष्णवी वाप्यवैष्णवी।
सर्वदा साधने योज्या साधकानां कुलार्चने ॥ ३६ ॥

साधिकागण के कुलपूजन में शैवी, शक्तिसाधिका, वैष्णवी या अवैष्णवी शक्ति (स्त्री) साधनाकार्य में प्रयुक्त की जाती हैं ॥ ३६ ॥

साधिकायाः पूजनम्

वाक्याद्वा क्रीड़या वापि धनाद्वा मानसं नयेत्।
ना दोषो द्रव्यदाने च हीनजा कुलसाधने ॥ ३७ ॥

(साधिका की पूजा)

वाक्य द्वारा, क्रीड़ा, धन द्वारा साधिका का मन तुष्ट करे। कुलसाधन में तो हीनजातीय स्त्री को भी द्रव्य देने से कोई दोष नहीं होता ॥ ३७ ॥

विजयारससंयुक्ता हीनजा दीक्षिता सदा।
तद्भाले विलिखेन्मायां ततः सा भुवनेश्वरी ॥ ३८ ॥

विजया रस का पान किये हुये हीनजा स्त्री सर्वदा दीक्षिता है। उसके कपाल में "ह्रीं" बीज लिखे। इससे वह भुवनेश्वरी हो जाती है ॥ ३८ ॥

हीनजा भालसंयुक्ता भुवना भुवनेश्वरी।
हीनजा कुलसामान्या कुलचक्रं लिखेत् प्रिये ॥ ३९ ॥
तत्र पूजां चरेद् योगी गुरुमार्गक्रमेण च।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा पुरश्चरणमुच्यते ॥ ४० ॥

हे प्रिये! हीनजा स्त्री, कपाल पर मंत्र संयुक्त होने पर भुवना, भुवनेश्वरी कुलसामान्या कही जाती है। तदनन्तर कुलचक्र अंकित करे। लिखकर उस चक्र में गुरु द्वारा उपदिष्ट मार्ग से योगी (साधक) पूजा का अनुष्ठान करे। पूजा के अनन्तर १०८ जप करके पुरश्चरण करे ॥ ३९-४० ॥

अथवा शक्तिभाले तु त्रिपञ्चारं लिखेत् प्रिये ।
मनुं वा त्रिकोणस्थं तत्र पूजादिकं चरेत् ॥ ४१ ॥
वज्रपुष्पेण संलिख्य वज्रपुष्पेण पूजयेत् ।
तत्त्वयोगाज्जपेद्विद्यां कलौ कलुषहारिणीम् ।
अष्टोत्तशतं जप्त्वा पुरश्चरणमुच्यते ॥ ४२ ॥

हे प्रिये ! किंवा शक्ति (हीनजा स्त्री) के कपाल पर ५ त्रिकोण अंकित करे अथवा तिकोनी स्थिति में मन्त्र लिखे । वहाँ पूजन करे । तिल के पुष्प के द्वारा ही पूजन करे । अब तत्वचिन्तन करते हुपे कलिकलुषहारिणि कालिका का मन्त्र जप करे । एक सौ आठ जप से पुरश्चरण पूर्ण हो जाता है ॥ ४१-४२ ॥

कुलजाष्टसुतां शुद्धां रजकीं योगिनीस्तथा ।
नटीं कापालिकां वेश्यां शौण्डिकां श्वपचीं तथा ।
विदग्धा हीनजां सर्वां पूजयेद् द्रव्यदानतः ॥ ४३ ॥
आसां भाले लिखेन्मायां ततस्ताः परिपूजयेत् ।
सर्वथा दीक्षयेन्नैताः दीक्षयेन्नरकं व्रजेत् ॥ ४४ ॥

तन्त्रसाधना के लिये पूज्या कन्या आठ प्रकार की हैं, जो शुद्धा कही जाती हैं । यथा रजकी, योगिनी, नटी, वेश्या, मद्यपायिनी अथवा शराबी की कन्या; चाण्डाली तथा हीनजातीया रतिचतुरा । इस प्रकार की हीनजातीया परकीया कन्या की पूजा द्रव्यदान द्वारा करे । इनके कपाल पर "ह्रीं" मन्त्र लिखकर तब उनकी पूजा करना चाहिये । इन्हें किसी भी प्रकार की दीक्षा प्रदान न करे; अन्यथा नरक मिलता है ॥ ४३-४४ ॥

नानाजात्युद्भवा रम्भा हीनजा परिकीर्त्तिता ।
चतुर्वर्णोद्भवो रम्भा दीक्षयेद्गुरुमार्गतः ॥ ४५ ॥
हीनजा यदि लभ्येत तदान्यां परिचिन्तयेत् ।
हीनजां पूजयेद् योगी नःसङ्गे निशिवारतः ॥४६॥

यदि हीनजा कन्यायें प्राप्त हो जाती है, तब उनमें से एक का चिन्तन करे । योगी निःसंग होकर रात्रि में हीनजा का पूजन एक बार करे ॥४६॥

हीनजां द्रव्यदानेन तोषाय तत्वचिन्तनात् ।
तत्र मन्त्रञ्च यन्त्रञ्च लिखित्वा पूजयेद् यदि ।
स मुक्तः कालिकापुत्रो न स भूमौ प्रजायते ॥४७॥

हीनजा कन्या को द्रव्यदान से सन्तुष्ट करके तत्वचिन्तन करते हुये मन्त्र यन्त्र लिखकर उसका पूजन करने पर साधक कालिकापुत्र हो जाता है । उसका पृथ्वी पर पुनर्जन्म नहीं होता ॥४७॥

कामाख्या पूजिता येन स मुक्तो नात्र संशयः ।
शक्तिमन्त्रः न सिध्यन्ति कामाख्या पूजनं बिना ॥४८॥

जो व्यक्ति कामाख्या देवी का पूजन करता है, वह मुक्त है । इनका पूजन किये बिना शक्तिमन्त्र सिद्ध नहीं होता ॥४७॥

ब्राह्मणीं क्षत्रियां वैश्यां शूद्राञ्च वरवर्णिनि ।
नाहरेद् द्रव्यदानेन हरेच्च नरकं व्रजेत् ॥४९॥

हे वरवर्णिनी ? ब्राह्मजी, क्षत्रिया वैश्या तथा शूद्रा को द्रव्यदान द्वारा न लाये । यदि द्रव्यदान से उन्हें (प्रलोभित करके) लाया जाता है, तब नरक प्राप्त होता है ॥४९॥

आकर्षिताय शिष्याय प्रत्यानुत्याञ्च दीक्षिताम् ।
पूजयेत् परया भक्त्या तासाञ्चाहं विशेषतः ॥५०॥

उन्हे आकर्षित करके या शिष्या बनाकर अथवा अनुरोध करके; दीक्षित करके भक्तिपूर्वक उनका पूजन करना चाहिये । मैं उनमें विशेष रूप से स्थित रहता हूँ ॥५०॥

आसामभावे देवेशि स्वशक्तिं परिपूजयेत् ।
स्वशक्तौ सिद्धमन्त्रः स्यात् पश्चाद्देवान् प्रपूजयेत् ॥५१॥

हे देवेशी ! इनके अभाव में अपनी शक्ति की पूजा करे । अपनी शक्ति (स्त्री) की पूजा करके मन्त्रसिद्ध होकर तब अन्य देवताओं का पूजन करे ॥५१॥

साधिकाशक्ते : पूजाप्रकारः

अङ्गावरणपूजादौ यदि वा लक्ष्यते कुलम् ।
तदैव हीनजां शक्तिं शोधयेदुक्तवर्त्मना ॥५२॥

(साधिका शक्ति का पूजाप्रकार)

अंगपूजा तथा आवरणपूजा में यदि कुल लक्षित होता है; उस स्थिति में हीनजा शक्ति को पूर्वोक्त रीति से शोधित करे ॥५२॥

हीनजा शोधयेदेकां सिद्धमन्त्री त्वलिप्सितः ।
हीनजा सुप्रसन्ना चेत् सिद्धिर्भवति साधकः ॥५३॥

गुरु का भक्त साधक लिप्सारहित होकर एक हीनजा का शोधन करे। यदि हीनजा साधक पर प्रसन्न हो जाती है, तब साधक को सिद्धि प्राप्त होता है ॥५३॥

सर्वदा हीनजा शक्ति सर्वत्रैव प्रपूजयेत् ।
गुरुनाम च यन्त्रञ्च पूजयेत् कुलमार्गिणम् ॥५४॥

हीनजा शक्ति का सर्वत्र सर्वदा पूजन करे। गुरु नाम, यन्त्र, एवं कुलमार्गी का सर्वदा पूजन करे ॥५४॥

भैरवं भैरवीं तत्त्वं मनसा न प्रकाशयेत् ।
कन्याकोटिप्रदानेन हेमभारशतस्य च ।
यत् फलं लभते देवि तत् फलं निजमन्दिरे ॥५५॥

भैरव-भैरवी तत्व का मन में भी प्रकाश न करे। शतभार सुवर्ण, कोटि कन्या प्रदान करने पर जो फल होता है, हे देवी ! अपने मन्दिर में अर्थात् तांत्रिक पूजा में वही फल होता है ॥५५॥

प्रथमां द्वितीयामुक्तां शक्तिभोऽपि ददेद् यदि ।
तृप्यन्ति देवताः सर्वा योगिन्यो भैरवादयः ॥५६॥

यदि उक्त वस्तु प्रथमा शक्ति, द्वितीया शक्ति अथवा शक्ति समूह को दान किया जाये, तब समस्त देवता, योगिनीगण, भैरव प्रभृति तृप्त हो जाते हैं ॥५६॥

पृथिवीं हेमसम्पूर्णां दत्त्वा यत् फलमालभेत् ।
तत् फलं कौलिकां गेहे पूजायां लभेत् ध्रुवम् ॥५७॥

सुवर्णयुक्त पृथ्वी दान करने से जो फल होता है, वह फल कुलमन्दिर में पूजन से प्राप्त हो पाता है ॥५७॥

गवां कोटि प्रदानेन यत् फलं लभते नरः ।
यत्फलं हीनजागेहे लभते नात्र संशयः ॥५८॥

अश्वमेघादि पुण्य कुलीन के गृह का दर्शन करने से प्राप्त होता है (कुलीन =कुलपूजक)। करोड़ो गौ के दान का जो पुण्य प्राप्त होता है, हीनजा के गृह का दर्शन करने से वही फल मिलता है। यह निःसंदिग्ध है ॥५८॥

तिस्त्रः कोट्यर्द्धकोटी च तीर्थस्नानेषु यत् फलम् ।
तत् फलं लभते देवि कुलीना यन्त्रदर्शने ॥५९॥

हे देवी ! साढ़े तीन करोड़ तीर्थ स्नान से जो फल प्राप्त होता है, पूर्णाभिषिक्त तांत्रिकों के यन्त्र दर्शन से वही फल मिलता है ॥५९॥

कुलीनां यन्त्रमालिख्य यद् यत् कर्म समाचरेत् ।
तत् कर्म सफलं याति सत्यं सत्य न संशयः ॥६०॥

कुलीन (कुल साधक) द्वारा उपदिष्ट यन्त्र लिखकर जो प्रयोग होगा, वह कर्म सफल होगा। यह सत्य एवं निःसंदिग्ध है ॥६०॥

कुलीनां यन्त्रमालोक्य सर्व पापैः प्रमुच्यते ।
शैवाः शाक्ताश्च सौराश्च वैष्णवाश्च कुलेश्वरि ॥६१॥

हे कुलेश्वरी ! कौलिकगण का यन्त्र दर्शन करके शैव-शाक्त सौर-वैष्णव आदि सभी पापमुक्त हो जाते हैं ॥६१।

पूजयन्ति सदा भक्त्या कुलीना गृहमन्दिरे ।
सर्वे यां यन्त्रमन्त्राणां दुर्गाधिष्ठातृदेवता ।
यतो वै जायते विश्वं तस्मात्तां परिपूजयेत् ॥६२॥

कौल घर में सदा पूजन करते हैं। जो समस्त यन्त्र तथा मन्त्र की अधिष्ठात्री देवता दुर्गा हैं; उनसे ही समस्त जगत् उत्पन्न होता है। अतः उनका पूजन करे ॥६२॥

यन्त्रपूजाकृतो यन्त्री न स योनौ प्रजायते ।
यन्त्रपूजां बिना देवि न शक्तिपूजनञ्चरेत् ॥६३॥

यदि मन्त्रसाधक यन्त्र पूजा करता है, तब वह पुनः मातृयोनि से जन्म नहीं लेता। (जन्म मृत्यु से छूट जाता है) हे देवी ! यन्त्र पूजन के बिना कदापि शक्ति पूजन न करे ॥६३॥

॥ इति श्रीनिरुत्तरतन्त्रे एकादशः पटलः ॥

॥ एकादशपटल समाप्त ॥

द्वादशः पटलः

श्रीशिव उवाच

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि साधनं भुवि दुर्लभम् ।
येन कृते लभेत् सिद्धि देवानामपि दुर्लभाम् ॥१॥

श्रीशिव कहते हैं—अब पृथ्वी पर जो दुर्लभ साधन है, उसे कहता हूँ। इससे जो सिद्धि मिलती है, वह देवताओं को भी दुर्लभ है ॥१॥

ललाटे शक्तिमन्त्रन्तु त्रिरावृत्य लिखेद्बुधः ।
तन्मध्ये कामबीजञ्च विलिखेत् कामलाञ्छितम् ॥२॥
कामेन पुटितं कृत्वा पूजयेत् परमेश्वरीम् ।
सम्पूज्य कालिकां देवी यन्त्रञ्च परिपूज्यते ॥३॥

विद्वान व्यक्ति कपाल पर तीन बार शक्तिमन्त्र लिखे। उसके मध्य में अधोमुख त्रिकोण में "क्लीं" बीज लिखे। 'क्लीं' बीज द्वारा शक्तिमन्त्र पुटित करके परमेश्वरी कालिका का पूजत करके यन्त्र पूजन करे ॥२-३॥

तत्वचिन्तापरो योगी जपेल्लक्षं निराकुलः ।
संगृह्य कुलपुष्पन्तु पूजयेच्च पुनः पुनः ॥४॥
सहस्त्रं तर्पयेत् पीठे यन्त्रप्रक्षालनोदकैः ।
एवं कृते लभेत् सिद्धि सत्यं सत्यं न संशयः ॥५॥

योगी साधक तत्वचिन्तन करते हुये शान्तचित्त से एक लाख जप करे। करवीर पुष्प अथवा स्वयम्भू पुष्प (कन्या के प्रथम रजदर्शन का रक्त) संग्रह करके पुनः पुनः कालिका का पूजन करे। यन्त्र प्रक्षालन करके जल द्वारा एक हजार तर्पण करे। इस प्रकार करने से अवश्यमेव सिद्धि मिलती है ॥४-५॥

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि पुरश्चरणमुत्तमम् ।
शतं भाले शतं केशे शतं सिन्दूरमण्डले ॥६॥

अब अन्य प्रकार का पुश्चरण कहा जाता है। शक्ति (स्त्री) के कपाल पर १००, सिन्दूरयुक्त मण्डल पर १०० ॥६॥

शतमेकं मुखाब्जेषु पुष्पवक्त्रे शतद्वयम् ।
शतद्वंद्वं कुलद्वंद्वे शतञ्च नाभिमण्डले ।
शतमेकं कुलागारे प्रजपेद् भक्तिभावतः ॥७॥

मुखपद्म पर १००, पुष्प मुख पर २००, स्तन द्वय पर २००, नाभि पर १००, योनि पर १०० जप भक्ति पूर्वक करे ॥७॥

एवं दशशतं जप्त्वा कुलागारे ततो जपेत् ।
पूजयित्वा जपेन्मन्त्रं गजान्तकसहस्त्रकम् ॥८॥

इस प्रकार दशशत जप करके तदनन्तर कुलगृह में जप करे। पूजा करके पुनः ११००० मन्त्र जप करना चाहिये ॥८॥

ततस्तु तत्वंयोगेन शतमष्टोत्तरं जपेत् ।
पूजनञ्च पुनस्तत्र पुरश्चरणमुच्यते ॥९॥

तदनन्तर तत्वमुद्रा द्वारा १०८ जप करे। पुनः पूजन करके पुरश्चरण सम्पन्न होता है ॥९॥

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि कुलागारस्य साधनम् ।
येन कृते महेशानि सर्वपापक्षयो भवेत् ॥१०॥

अब अन्य प्रकार का कुल साधन कहता हूँ। हे महेशी ! यह साधना करने से समस्त पापों का क्षय हो जाता है ॥१०॥

कुलागारे कुलाष्टम्यां कुलमाहूय पूजयेत् ।
तर्पणञ्च जपं होमं तत्तदक्षयतां व्रजेत् ॥११॥

कुलाष्टमी के दिन (कृष्ण पक्ष की अष्टमी के दिन) कुलगृह में तांत्रिक वीरसाधक अथवा स्त्री को निमन्त्रित करके पूजन करे। तदनन्तर तर्पण, जप तथा होम करने से सब कुछ अक्षय हो जाता है ॥११॥

कदलीतरुमूलञ्च द्विगुणं यदि दृश्यते ।
तत्रैव महती पूजां कर्त्तव्या वरवर्णिनि ॥१२॥

यदि केला के वृक्ष की जड़ में दो जड़े देखी जायें, हे वरवार्णिनी ! उस जड़ पर महती पूजा करना चाहिये ॥१२॥

तद् घृते ब्रह्मवक्त्रेण होमं कुर्याद्विचक्षणः ।
होमं कृत्वा जपेन्मन्त्रं कोटिकोटिगुणां भवेत् ॥१३॥
द्विगुणं रजनीमूलं संवीक्ष्य यो जपेन्मनूम् ।
स भवेत् सर्वसिद्धीशस्तस्य पुण्यं न विद्यते ॥१४॥

विचक्षण व्यक्ति को वहाँ होम करना चाहिये। होम करके मन्त्र जप करने से उसका करोड़ों गुणित फल मिणता है।

जो व्यक्ति, रजनी नाम वृक्ष की इसी प्रकार दो जड़ें देखकर वहां मन्त्र जप करता है, वह समस्त सिद्धियों का अधिपति बन जाता है। उसके पुण्य का अन्त नहीं होता। (अथवा जो व्यक्ति रजनी गुणवाली साधिका का मुख देखते हुए मन्त्र जप करता है, उसे भी यही फल मिलता है) ॥१३-१४॥

रजनी स्वेच्छयाहूय साधकं कुलभूषणम् ।
विपरीता जपेन्मन्त्रं तस्याः पुण्यं न गण्यते ॥१५॥

रजनी गुणवाली स्त्री यदि स्वेच्छा से कुल साधक का आवाहन करके विपरीत होकर (विपरीतरतासक्ता होकर) मन्त्र जपे, उस स्थिति में उस स्त्री के पुण्य को गिना ही नहीं जा सकता ॥१५॥

रजन्याथ कुलागारे पुलिने निपुणा यदि ।
तत्समा रजनी कान्ता कमला वार्थधारिका ।
त्रिषु लोकेषु सा धन्या ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका ॥१६॥

यदि रजनी के सहित कुलमन्दिर में अथवा नदीतीर में रात्रि के समय कमनीया रजनीदेवी अर्थ साधिका हो जाती हैं, तब वे रजनीदेवी तीन लोक में धन्या हैं। वे ही हैं ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवस्वरूपिणी ॥१६॥

सिद्धविद्या महाविद्या मन्त्रयन्त्रफलप्रदा ।
तस्याः प्रसादमात्रेण दुष्टमन्त्रोऽपि सिध्यते ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तामेव शरणं व्रजेत् ॥१७॥

वे रजनीदेवी सिद्धविद्या महाविद्यारूपिणी, मन्त्र-यन्त्र फलप्रदा हैं। उनकी कृपामात्र से दोषयुक्त मन्त्र भी सिद्ध हो जाता है। अतः सर्वप्रकार से उनकी शरण लेनी चाहिये ॥१७॥

रजन्या रजनीयोगं विहरेद् यदि साधकः ।
जपेद्वा पूजयेत्तत्र सर्वं तन्निष्फलं भवेत् ॥१८॥

यदि साधक रात्रि में रजनीदेवी के साथ विहार करता है, अथवा जप या पूजन करता है, तब उसका सब कुछ निष्फल हो जाता है ॥१८॥

येनकेन प्रकारेण रजनीतोषणं चरेत् ।
वाह्याद्वा क्रीड़नाद्वापि रणाद्वा तोषयेत् सदा ॥१९॥

किसी भी प्रकार से रजनी देवी को संतुष्ट करे। वाह्य किसी भी प्रकार से, क्रीड़ा द्वारा, रण द्वारा उन्हें तुष्ट करे ॥१९॥

यं यं भावं रजन्याश्च तं तं भावं प्रकल्पयेत् ।
अतिरिक्तः कृतौ भावौ रौरवं नरकं व्रजेत् ॥२०॥

रजनी देवी में जो भाव आता है, उन्हीं की कल्पना स्वयं भी करे। अन्य भावों को मन में लाने पर रौरव नरक प्राप्त होता है ॥२०॥

कलायाः सम्मति कृत्वा साधयेत् कुलसाधनम् ।
अन्यथा नरकं याति सत्यं सत्यं न संशयः ॥२१॥

कला (इसे प्रथम पटल में समझाया गया है) की सम्मति लेकर कुल साधना करे। कला (स्त्री) की सम्मति बिना कुल साधना करने पर नरक प्राप्त होता है। यह सत्य है एवं निःसंदिग्ध है ॥२१॥

(कुलसाधनम्)

कलापि साधकं ज्ञात्वा सम्मति नैव जायते ।
सा चैव नरके घोरे वसेदेव न संशयः ॥२२॥

(कुलसाधन)

यदि कला (स्त्री) भी साधक पुरुष की सम्मति बिना कुलसाधन करती है, तब वह स्त्री भी घोर नरक में जाती है। यह निःसंदिग्ध है ॥२२॥

उभयोः सम्मति ज्ञात्वा साधयेत् कुलसाधनम् ।
असम्मत कुलासङ्गात् सिद्धिहानिः प्रजायते ॥२३॥

दोनो एक दूसरे की सहमति से ही कुलसाधन में प्रवृत्त हों। यदि असम्मता स्त्री अथवा असम्मति रखने वाले साधक साधनरत होते हैं, तब सिद्धिहानि ही होती है॥२३॥

योगच्छेद्रजनीगेहे कुलसाधनवर्जिते ।
स एव नरकं याति सत्यं सत्यं न संशयः ॥२४॥

कुलसाधनरहित रजनी देवी के गृह में जो साधक जाता है, वह नरक में जाता है । यह सत्य है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥२४॥

क्रोधाद्वा कामतो वापि द्वेषाद्वा वरवर्णिनि ।
स गच्छेद्रजनीगेहं गच्छेच्च नरकं व्रजेत् ॥२५॥

हे वरवर्णिनी ! क्रोध, काम या द्वेष को लेकर रजनीदेवी के गृह में कदापि न जाये । अन्यथा नरक मिलता है ॥२५॥

अज्ञात्वा कुलसङ्केतं कुलमार्गं विशेद् यदि ।
स याति नरकं घोरं का कथा परजन्मनि ॥२६॥

जो तांत्रिक रहस्य साधना के गुप्त संकेत को (रहस्य पद्धति को) जाने बिना रहस्यसाधना करता है, उसे घोर नरक की यातना इसी जन्म में मिलती है । परजन्म की तो बात ही क्या ? ॥२६॥

गुरुं विलङ्घ्य शास्त्रेऽस्मिन् नाधिकारी कदाचन ।
गुरोराज्ञां समादाय कुलपूजां चरेत् सुधीः ॥२७॥

गुरु की अवहेलना करके कोई भी इस शास्त्र का अधिकारी नहीं हो सकता । बुद्धिमान साधक गुरु की आज्ञानुसार ही कुलपूजन में तत्पर होते हैं ॥२७॥

पशोर्वापि शठाद्वापि धूर्त्ताद्वा चुल्लुकादपि ।
न गृह्णीयात् सिद्धविद्यां गृह्णीयाद् दुःखभाग भवेत् ॥२८॥

पशुभाव के साधक से, शठ या धूर्त आदि से कदापि सिद्धविद्या ग्रहण नहीं करना चाहिये, अन्यथा दुःख का भागी बनना पड़ता है ॥२८॥

मधुलुब्धो यथा भृङ्गः पुष्पात् पुष्पान्तरं व्रजेत् ।
ज्ञानलुब्धस्तथा शिष्यो गुरोर्गुर्वन्तरं व्रजेत् ॥२९॥

जैसे मधु का लोभी भ्रमर एक पुष्प से-अन्य पुष्प पर मंडराता रहता है; उसी प्रकार ज्ञानलुब्ध साधक को एक गुरु से अन्य गुरु के पास जाना चाहिये । अर्थात् यदि एक गुरु से संतोष न मिले तब अन्य गुरुओं की शरण करे ॥२९॥

८

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुलीन गुरुमाश्रयेत् ।
कुलीनस्तन्त्रमन्त्राणामधिकारीति गीयते ॥३०॥

अतएव सर्वप्रयत्न द्वारा वीर सिद्धगुरु का आश्रय लेना उचित है । कुलीन ही तन्त्र एवं मन्त्र का अधिकारी कहा गया है ॥३०॥

आजन्म च परं वस्तु कुलीनाय निवेदयेत् ।
शुभे मासि शुभे पक्षे शुभे लग्ने शुभे दिने ॥३१॥
पूर्वोक्तमन्त्रज्ञानेन घटं संस्थापयेत्ततः ।
भूर्जपत्रे समालिख्य घटे संस्थाप्य यत्नतः ।
तत्र पूजाञ्चरेत्द्धीमान् महाचीनक्रमेण च ॥३२॥

कुलीन गुरु को आजीवन श्रेष्ठ वस्तु अर्पित करता रहे । शुभमास, शुभपक्ष, शुभ लग्न तथा शुभवार को (पहले पटलों में) कही गयी विधि के अनुसार मन्त्र द्वारा घट स्थापना करना चाहिये । भोजपत्र पर मन्त्र लिखकर उसे यत्नपूर्वक घर में स्थापित करके बुद्धिमान गुरु महाचीन पद्धति के अनुसार उस घट का पूजन करे ॥३१-३२॥

पूजयित्वा ततो देवीं गुरुः सूर्यं विचिन्तयेत् ।
ततः कुलीनामाश्रित्य मन्त्रं तन्त्रं विलोकयेत् ॥३३॥

इस प्रकार से गुरु देवीपूजन करके सूर्य का चिन्तन करे । तदनन्तर तन्त्र-साधनरत स्त्री का आश्रय लेकर मन्त्र एवं तन्त्र का चिन्तन करे ॥३३॥

अभिषेकञ्च तत्रैव कुर्यात् कुलपरायणः ।
पशोर्वा चुल्लुकाद्वापि धूर्त्ताद्वा कुलपामरात् ।
सिद्धविद्यां न गृह्णीयात् ग्रहणीयान्नरकं व्रजेत् ॥३४॥

अब कुलपरायण गुरु शिष्य का अभिषेक करे । पशुभाव के साधक, धूर्त्त, पामर से कभी भी सिद्धविद्या ग्रहण करना वर्जित है । अन्यथा नरक प्राप्त होता है ॥३४॥

जपपूजां तथा होमं साधनं सर्व कर्मसु ।
सर्वञ्च निष्फलं याति दुःखं तस्य पदे-पदे ॥३५॥

पूर्वोक्त पशुभाव के साधक प्रभृति से मन्त्र ग्रहण करने से समस्त कर्म, जप, पूजा, होमादि निष्फल हो जाता है और ऐसे शिष्य को प्रति पद पर दु.ख का भागी होना पड़ता है ॥३५॥

कुलद्रव्याणि देवेशि पश्वादिभ्यो न दर्शयेत् ।
दर्शयेत् सिद्धिहानिः स्याद्रौरवं नरकं व्रजेत् ॥३६॥

हे देवेशी ! पशुभाव आदि वालो को कुलद्रव्य कदापि प्रदर्शित न करे, अन्यथा साधक की सिद्धि हानि होती है और नरक प्राप्त होता है॥३६॥

(कुलसाधने नियमाः)

कुलपूजादिकं कर्म पशोरग्रे चरेद् यदि ।
तत् कर्म निष्फलं याति का कथा परजन्मनि ॥३७॥
पशोरालापनाद्देवि कूलकर्म प्रणश्यति ।
पशोर्दर्शनमात्रेण सूर्यदर्शनमाचरेत् ॥३८॥

(कुलसाधन का नियम)

पशुभाव वालों के समक्ष कुलपूजनादि करने से वह कर्म निष्फल होता है । परजन्म की तो बात ही क्या ?

हे देवी ! पशुभाव वालों के साथ बात-चीत (साधन की) प्रभृति से भी कुलकर्म नष्ट हो जाता है। पशुभाव वालों का दर्शन करते ही सूर्य को देखना चाहिये, ताकि पशुभाव दर्शन का दुष्फल न हो ॥३७-३८॥

स एव द्विविधो देवि दीक्षितोऽदीक्षितः पशुः ।
दीक्षितो हि भवेत् पूर्वोऽदीक्षितो हि महापशुः ॥३९॥

हे देवी । पशु द्विविध हैं । दीक्षित एवं अदीक्षित । पशुभाव की दीक्षा लेने वाले पशु हैं । जो अदीक्षित हैं, वे महापशु हैं ॥ ३९ ॥

पूर्वं सङ्गात् कुलेशानि सिद्धिहानिः प्रजायते ।
महापशुसमायोगान्न कुलं शरणं ब्रजेत् ॥४०॥

हे कुलेश्वरी ! दीक्षित पशु का साथ करने से सिद्धिहानि होती है और महापशु के साथ कदापि कुल पद्धति का अर्चन न करे, अन्यथा साधक कुलकर्म का अनधिकारी हो जायेगा ॥ ४० ॥

पशुमात्र समायोगात् प्रेतराज्याधिपो भवेत् ।
पशुमात्र समायोगात् कुलकर्म प्रणश्यति ॥४१॥

पशुभाव वालों का संग करने से प्रेतराज्य के अधिपति का निन्दित स्थान मिलता है। पशुभाव वालों का साथ करने से कुलकर्म विनष्ट हो जाता है ॥ ४१ ॥

तस्मात् सर्व प्रयत्नेन कुलीनं गुरुमाश्रयेत् ।
कुलीन सेवितस्यापि मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥४२॥

अतः समस्त प्रयत्न द्वारा कुलीन गुरु की शरण लेनी चाहिये । कुलीन गुरु की सेवा से मन्त्रसिद्धि होती है ॥४२॥

पशुं शठञ्च धूर्तञ्च चुल्लुकञ्च विशेषतः ।
धर्मार्थकाममोक्षार्थी गुरुत्वेन न चार्चयेत् ॥४३॥

पशुभावापन्न, शठ, धूर्त विशेषतः चुगलखोर की अर्चना धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चाहने वाला साधक कदापि न करे ॥४३॥

॥इति श्रीनिरुत्तरतन्त्रे द्वादश : पटलः ॥

॥बारहवां पटल समाप्त ॥

त्रयोदशः पटल :

श्रीदेव्युवाच

तासाञ्च सिद्धविद्यानां यस्य याः प्रपूजिताः ।
तास्ताः शक्ति विशेषण कथयस्व मयि प्रभो ॥१॥

श्रीदेवी कहती हैं--हे प्रभो ! इन सिद्धविद्या समूह में से जिस (स्त्री द्वारा) से जो सिद्धविद्या पूजिता होती हैं, उस उस विद्या की शक्ति विशेषण द्वारा मुझसे कहिये ॥१॥

श्रीशिव उवाच

कुलश्च सर्वजातीनां नाकुलीनां कुलार्चने ।
सिद्धविद्या विशेषेण सिद्धिदा कुलपूजने ॥२॥

श्री शिव कहते हैं--कुल पूजन में सभी प्रकार की स्त्री कुलीना (पूजा-योग्या) नहीं होतीं । वे कुल पूजन की विशेष सिद्धविद्या के रूप में ही (मानी जाने पर ही) सिद्धविद्यारूप से पूजिता हो जाती है ॥२॥

श्यामाविद्या न सिध्यन्ति नापिताङ्गनया बिना ।
ताराविद्या नसिध्यन्ति चाण्डालीगमनं बिना ॥३॥

नापिता कन्या (नाऊ की कन्या) के बिना श्यामा का मन्त्र सिद्ध नहीं होता । चाण्डालीगमन के बिना ताराविद्या प्रसन्न नहीं होतीं ॥३॥

श्रीविद्या न च सिध्यन्ति ब्राह्मणीगमनं बिना ।
छिन्नमस्ता न सिध्यन्ति कापालीगमनं बिना ॥४॥

ब्राह्मणी गमन के बिना श्रीविद्या और कापालीगमन के बिना छिन्नमस्ता सिद्ध नहीं होतीं ॥४॥

सिद्धविद्या न सिध्यन्ति भूमीन्द्र तनया बिना ।
जलकान्तगृहे देवि भैरवी न सुसिध्यति ॥५॥

राजकन्या के बिना बगलाविद्या सिद्ध नहीं हो सकती और जलकान्ता (जाति विशेष) के बिता भैरवी की उत्तम सिद्धि नहीं मिलती ॥५॥

मध्यमा रहिता प्रोक्ता विहिता द्रुतसिद्धिदा ।
साधयेद्रजनी सर्वां ब्राह्मणीं यवनीं बिना ॥६॥

मध्यमा, रहिता, प्रोक्ता एवं विहिता को द्रुत सिद्धि प्रदायिनी कहा जाता है । ब्राह्मणी तथा यवनी के अतिरिक्त समस्त स्त्री समूह की रजनी रूप से साधना की जा सकती है ॥६॥

सर्वावस्थां परित्यज्य साधयेद् द्विजजां द्विजाः ।
राजराजेश्वरी साक्षाद् द्विजजारुपधारिणी ॥७॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य को समस्त अवस्थाओं का परित्याग करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्य कन्या का साधन करना चाहिये । राजराजेश्वरी देवी साक्षात् द्विजकन्या रूप हैं ॥७॥

(सिद्धविद्यायाः साधनम्)

द्विजजातोषणादेव द्रुत सिध्यति सुन्दरी ।
श्रेष्ठवर्णोद्भवां रम्भां साधने नैव साधयेत् ।
साधयेत् सिद्धिहानिः स्याद्रौरवं नरकं व्रजेत् ॥८॥

(सिद्धविद्या साधन)

हे सुन्दरी ! द्विजों में उत्पन्न कन्या को तुष्ट करने पर तत्काल सिद्धि मिलती है । श्रेष्ठवर्ण में उत्पन्न रम्भा लक्षण वाली कन्या को साधन विशेष हेतु

अपने वश में नहीं करना चाहिये । अन्यथा सिद्धिहानि एवं रौरव नरक प्राप्त होता है ॥८॥

अथान्यात् सम्प्रवक्ष्यामि रजनीं साधानान्तराम् ।
यस्मिन् कृते भवेत् सिद्धिर्देवनामपि दुर्लभा ॥९॥

अब रजनी देवी का अन्य साधन कहा जा रहा है, जिसे करने से देवदुर्लभ सिद्धि मिल जाती है ॥९॥

रजनीद्विगुणां वीक्ष्य सहस्त्रं यदि साधकः ।
पञ्चाशद्विवसं यावत्तावञ्च प्रत्यंह जपेत् ॥१०॥
सम्पूज्य रजनीं भूमिं संगम्य प्रजपेन्मनूम् ।
तदा वादी सुसिद्धः स्याज्जयेत् क्षितितनुं विशेत् ॥११॥

यहाँ रजनीवृक्ष की एक जड़ से दो जड़े निकली हो वहाँ अथवा रजनी गुणवाली दो स्त्री को देखकर प्रतिदिन १००० जप पचास दिनों तक करे । रजनी देवी का पूजन करके भूमि पर चलते-चलते जप करे । इस स्थिति में वादी सिद्ध हो जाता है । वह जप के प्रभाव से पृथ्वी के शरीर में प्रवेश करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है ॥१०–११॥

पर्वते हस्तमारोप्य शतशः शुद्धभावतः ।
कवितां लभते धीमान् देवीलोकं मृते व्रजेत् ॥१२॥

वह बुद्धिमान साधक पर्वत पर हाथ रखकर १०० बार जप करके कवित्व शक्ति प्राप्त करता है और मृत्यु के पश्चात् देवीलोक में स्थान प्राप्त कर लेता है ॥१२॥

त्रिसूत्रं वीक्ष्य संजप्य शतः शुद्धभावतः ।
स सर्वं रजनीनाथः कलौ कल्पलता भुवि ।१३॥
पद्ममध्यं तथा बिम्बं खञ्जनं शिखर तथा ।
चामरं वारिबिम्बञ्च तिलपुष्पं सरोरुहम् ॥१४॥

पद्म का मध्यभाग, प्रतिमारूप बिम्ब, खंजन पक्षी, पर्वत शिखर, चामर, जल में देवता का प्रतिबिम्ब, तिल का पुष्प, पद्म, यज्ञोपतीत देखकर यदि १०० बार शुद्ध रूप से जप किया जाये, तब व्यक्ति समस्त रजनी देवीयों के नाथ के रूप में कलिकाल में पृथ्वी पर वास करता है ॥१३-१४॥

सम्पूज्य रजनीगेहं मनूं तत्रैव संलिखेत् ।
कलां वा कनकास्त्रेण देवीं ध्यात्वा पुनर्जपेत् ।।१५।।

रजनी के गृह में पूजन करके वहाँ मन्त्र लिखे अथवा स्वर्णनिर्मित छूरी से कला देवी की प्रतिमा अंकित करे। रजनी देवी का ध्यान करके पुनः जप करे ।।१५।।

तदुद्भवेन पुष्पेण पूजयेद्भक्तिभावतः ।
स याति शिवतां भूमौ कुलद्रुमगतः शुचिः ।।१६।।

वह रजनीदेवी अथवा कलादेवी (स्त्री शक्ति) से उत्पन्न पुष्प द्वारा (रजः द्वारा) कुलवृक्ष (बहेड़ा, करंज, कदम्ब, पीपल, गूलर, बटवृक्ष, बेल का पेड़, आमलकी वृक्ष) के नीचे बैठकर भक्तिपूर्वक पूजन करे। इस प्रकार से पूजन करने पर वह व्यक्ति शिवत्व प्राप्त करता है ।।१६।।

ब्रह्मतरौ, महापद्मे ध्यात्वा देवीं प्रपूजयेत् ।
तत्सुधासारसारेण तर्पयन्मातृकामुखे ।।१७।।

अश्वत्थ वृक्ष अथवा महापद्म (सहस्त्रार कमल) में देवी का ध्यान करके उनका पूजन करे। उस ध्यान के सुधासार द्वारा (मन ही मन) मातृका देवी के मुख में तर्पण करे ।।१७।।

कलापूजाक्रमेणैव रजनीवेष्ठिता यदि ।
महानिशि जपेन्मन्त्रं ध्रुवं मोक्षं स चार्हति ।।१८।।

यदि देवीरूपा स्त्री का पूजन करके रजनीदेवी से आवेष्ठित होकर महा-निशा में मन्त्र जप करे, तब उस जप करने वाले को मोक्ष की योग्यता प्राप्त हो जाती है ।।१८।।

तिथिक्रमेण कामेन रजनीवेष्ठितो जपेत् ।
तदा मासेन सिद्धिः स्यात् सहस्त्रजपमानतः ।।१९।।

तिथि क्रम से कामनापूर्वक रजनीदेवी (रजनी लक्षणा स्त्री) से आवेष्ठित होकर जप करे। प्रतिदिन १००० जप करे, तब १ मास में सिद्धि प्राप्त हो जाती है ।।१९।।

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां द्विगुणं यदि दृश्यते ।
मन्त्रं कलान्तरे देवि लिखित्वा कुङ्कुमेन च ।।२०।।
तत्पार्श्वे साध्यमालिख्य ताड़येत् सृष्टिवृष्टिभिः ।
साध्यसूक्तिं जपेत्तत्र कामार्त्ता तत्र लभ्यते ।।२१।।

यदि अष्टमी अथवा चतुर्दशी में इस प्रकार की दो जड़ वाला रजनी वृक्ष अथवा दो रजनी स्त्री दिखलाई पड़े तब उसे देखकर कुंकुम द्वारा अन्य कला लक्षण वाली स्त्री के अंग पर मन्त्र लिखकर उस मन्त्र के बगल में साध्य स्त्री का नाम लिखकर उसे मुट्ठी द्वारा मारे तथा साध्य मन्त्रों का जप करे। इससे जिस साध्य स्त्री का नाम लिखा गया है, वह कामार्त्ता हो जाती है ।।२०-२१।।

तत्र पूजां चरेद्धीमान् महाचीनक्रमेण च ।
ग्रामे पातालके रम्ये श्मशाने प्रान्तरेऽपि वा ।।२२।।

बुद्धिमान व्यक्ति उस कला लक्षण वाली स्त्री का पूजन महाचीन क्रम से करे। ग्राम, पाताल के समान गर्त्त में, श्मशान अथवा प्रान्तर में उस कलादेवी का पूजन करे ।।२२।।

लिखित्वा यन्त्रमन्त्रञ्च कामाख्यायां प्रपूजयेत् ।
तदा राज्यमवाप्नोति इहैव कुलसुन्दरि ।।२३।।

अब मन्त्र तथा यन्त्र लिखकर कामाख्या धाम में पूजन करे। हे कुलसुन्दरी ! इससे इस जन्म में ही उस साधक को राज्य प्राप्त हो जाता है ।।२३।।

(रजनीपूजादेः फलम्)

मृते च मोक्षमाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः ।
रजोमूले रजन्यान्तु यो याति बिल्वपत्रकैः ।
देवीं सहस्त्रं प्रजपेत् पितृमभ्यर्च्य कानने ।
तदा राज्यमवाप्नोति यदि वा न पलायते ।।२४।।

(रजनी पूजन का फल)

कामाख्या में इस प्रकार से पूजन करने वाला व्यक्ति मृत्यु के उपरान्त मुक्ति प्राप्त करता है। यह सत्य है एवं निःसंदिग्ध है। जो व्यक्ति बिल्व पत्र लेकर रजनीदेवी के रजोमूल में (जहाँ रजनी वृक्ष की दो जड़ें एक ही जड़ से निकली हों) जाता है और श्मशान में उन देवी का अर्चन करके १००० जप करता है, यदि वह व्यक्ति भयभीत होकर श्मशान से नहीं भागे, तब उसे राज्य प्राप्त होगा ।।२४।।

चितायं रजनीगेह संगम्य च जपेन्मनूम् ।
यं यं कामयते काम्यं तं तमेव ध्रुवं लभेत् ।।२५।।

यदि रजनीदेवी के गृह में जाकर (तदुपरान्त) श्मशान में मन्त्र जप किया जाये, तब उस स्थिति में जपकारी व्यक्ति मन में जिस भी काम्य वस्तु की कामना करता है, उसे वह निश्चित मिलती है ।।२५।।

पुनश्च तत्र सम्पूज्य स्वयम्भुकुसुमेन च ।
इहैव जायते सौख्यमन्ते च मोक्षमाप्नुयात् ।।२६।।

पुनः उस रजनीगृह में अविवाहिता कन्या के प्रथम रजरक्त (स्वयम्भू-पुष्प) से पूजा करके साधक इस जन्म में सुख तथा मृत्यु के पश्चात् मोक्ष प्राप्त करता है ।।२६।।

महाभूतादिने नक्तं श्मशाने रजनीयुतः ।
सहस्त्रैकप्रमाणेन किं न सिध्यति भूतले ।।२७।।

कृष्णा चतुर्दशी अथवा अमावस्या की रात्रि में श्मशान में रजनी स्त्री के साथ १००० जप करने पर इस पृथ्वी पर क्या नहीं मिल जाता ? ।।२७।।

रजनीरजसां देवि पिण्डञ्च परिकल्पयेत् ।
यन्नाम्ना जायते पिण्ड न गच्छेत् स यमालयम् ।।२८।।

हे देवी ! रजनीदेवी (स्त्री) के रजः द्वारा पिण्ड की परिकल्पना करे । जिसका नाम लेकर पिण्ड प्रदान किया जायेगा, वह कभी भी यमलोक नहीं जा सकता ।।२८।।

रजनीवेष्ठनादेव यत् फलं लभते प्रिये ।
तस्यापि षोडशांशञ्च चरेन्मार्गेण लभ्यते ।।२९।।

हे प्रिये ! रजनी स्त्री से आवेष्ठित होने से जो फल प्राप्त होता है, उसका षोडशांश तब मिलता है, जब रजनीदेवी से आवेष्ठित होकर मार्ग में चला जाये ।।२९।।

शवासनाधिकफलं लतागृहे प्रवेशनम् ।
तस्यापि षोडशांनाञ्च कलां नार्हति ते शवाः ।।३०।।

रजनी देवी के गृह में प्रवेश का फल शवासन की तुलना से (शवसाधना से) अधिक है । शवसाधना का फल उसका १/१६ भाग भी नहीं है ।।३०।।

।। इति श्रीनिरुत्तरतन्त्रे त्रयोदशः पटलः ।।

।। तेरहवां पटल समाप्त ।।

चतुर्दशः पटलः

श्रीदेव्युवाच

वेश्या च कीदृशी देव प्रशस्ता कुलपूजने ।
कन्याः संसर्गमात्रेण श्रेष्ठो भवति साधकः ।
नाना कुलगता वेश्या कथ्थं शम्भो कुलार्चने ।।१।।

श्रीदेवी पार्वती पूछती हैं—हे देव ! कुल पूजा में वेश्या किस प्रकार से आवश्यक हैं ? किस प्रकार की वेश्या के संसर्ग से साधक श्रेष्ठता प्राप्त करते हैं । नाना कुलगामिनी अथवा नाना वंशगता वेश्या किस प्रकार से कुलपूजा में प्रशंसनीय मानी गयी है ? ।।१।।

श्रीशिव उवाच

गुप्तवेश्या महावेश्या कुलवेश्या महोदया ।
राजवेश्या देववेश्या ब्रह्मवेश्या च सप्तधा ।।२।।

श्रीशिव कहते हैं—वेश्या सात प्रकार की होती हैं, यथा गुप्तवेश्या, महावेश्या, कुलवेश्या, महोदया, राजवेश्या, देववेश्या एवं ब्रह्मवेश्या ।।२।।

कुलजा गुप्तवेश्या स्यान्निर्लज्जा मदनातुरा ।
पशुभर्त्तृश्रिता लोके गुप्तवेश्या प्रकीर्त्तिता ।।३।।
कुलजा कुलवेश्या च महावेश्या प्रकीर्त्तिता ।
महावेश्या कुलेशानी स्वेच्छया च दिगम्बरी ।।४।।
कुलवेश्या कुलीना च वीरपत्नी कुलेश्वरी ।
महोदया समाख्याता स्वेच्छया विपरीतगा ।।५।।

गुप्तवेश्या—जो तंत्र साधक के घर में जन्मी, लज्जा रहिता, देवी प्राप्ति की काम वासना से आर्त्ता तथा पशुभाव के साधक को पतिरूप से वरण करने वाली होती हैं ।

कुलवेश्या—तांत्रिक क्रिया द्वारा जन्मी ही कुलवेश्या होती है ।

महावेश्या—जो कुलवेश्या नग्नादिगम्बरी रहती है ।

महोदया—जो कुलवेश्या तांत्रिक साधना युक्त होकर वीरभाव के साधक को पतिरूप में वरण करती है और अपनी इच्छा से हीं निवृत्ति मार्ग का वरण करती है ॥३-५॥

राजवद् या च वेश्या स्याद्राजवेश्या प्रकीर्त्तिता ।
देवं संयोज्य चक्रे च जप्त्वा तु विन्दुपातनम् ।
भगलिङ्गकपाले च चुम्बयेच्च पुनः पुनः ।
एवंविधा कुलीना चेद् ब्रह्मवेश्या प्रकीर्त्तिता ॥६॥

राजवेश्या—जो वेश्या राजा के समान स्वाधीन रहती है ।

देववेश्या—चक्र में देवता के साथ संयोग कराते समय जप करने से विन्दु पात द्वारा एवं भग-लिंग और कपाल का पुनः पुनः चुम्बन करने से जिस वेश्या का जन्म होता है ।

ब्रह्मवेश्या—जो देववेश्या तांत्रिक रहस्य की ज्ञाता तथा पूजा आदि की अधिकारिणी होती है ॥६॥

दिव्यशक्तिर्वीरशक्तिस्तासां संज्ञा प्रकीर्त्तिता ।
चतुर्वर्णोद्भावानाञ्च संज्ञिताः परिभाषिताः ॥७॥
वेश्यावत् भ्रमते यस्मात्तस्माद्वेश्या प्रकीर्त्तिता ।
वर्णसङ्करतो जाता सर्ववेश्याः प्रकीर्त्तिताः ॥८॥

ये वेश्यायें दिव्यशक्ति तथा वीरशक्ति भी कही जाती हैं । चारों वर्णों में उत्पन्न वेश्याओं की यही संज्ञा कही गयी है ।

ये वेश्या के समान भ्रमण करती रहती हैं, अतः इन्हें वेश्या कहा गया । जो वर्णसंकर वेश्या हैं, उन्हें सर्ववेश्या कहते हैं ॥७-८॥

कुल मार्गे प्रवृत्ता या सा वेश्या मोक्षदायिनी ।
चुम्बनालिङ्गनाधातं रतिविग्रहदर्शनम् ।

आमत्रणं त्रिसन्ध्याञ्च भगलिङ्गस्य कीर्त्तनम् ।
वेश्यानाञ्च जपाङ्गं दं शङ्करेण पुरोदितम् ॥९॥

जो वेश्या तांत्रिक कुल साधना में प्रवृत्त हैं, वे मोक्ष देने वाली हैं । शंकर ने पहले ही कहा है कि चुम्बन, आलिगन, अर्थात रतिविग्रह दर्शन, त्रिसन्ध्या आमन्त्रण, भग एवं लिंग का कीर्त्तन--यह है वेश्याओं के जप के अंग ।

आलिगन = अंगन्यास-करन्यास
चुम्बन = ध्यान
आघात = प्राणायाम
रतिविग्रह दर्शन = जप
आमंत्रण = देवता का आवाहन
भगलिंगकीर्त्तन = शिव एवं काली के नाम का स्मरण

विपरीत रति = कुलकुण्डलिनी का शिव के साथ मिलन, जो सहस्त्रार में रहते हैं ।

जपाङ्गेन बिना वेश्या न कुर्यात् स्थिरसङ्गमम् ।
जपाङ्गं प्रत्यहं कुर्यात् सा शिवैः सह मोदिता ॥१०॥

जपांग के बिना वेश्या को स्थिर संगम नहीं करना चाहिये । उसे प्रतिदिन साधकों (शिव) के साथ आनन्दान्वित होकर जपांग करना चाहिये ॥१०॥

निशायां प्रजपेन्मन्त्रं स्वयम्भू शिवयोगतः ।
वेश्यानां जपमात्रन्तु पुरश्चरणमुच्यते ।
विपरीता जपेन्मन्त्रं सा काली नात्र संशयः ॥११॥

उसे स्वयम्भु लिंग के साथ योग करके मन्त्र जप करना चाहिये । इनके जप को ही पुरश्चरण कहा जाता है । जो वेश्या विपरीतरति स्थिति में निवृत्ति मार्ग के मन्त्र का जप करती है, वह निःसंदिग्ध रूप से काली है ॥११॥

योषितां मन्त्रसिद्धिः स्याद् विपरीतरतौ प्रिये ।
विपरीतरतौ जप्त्वा सर्वं सम्पत्तिमालभेत् ॥१२॥

हे प्रिये ! विपरीत रति स्थिति में स्त्रीगण को मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है । विपरीत रति स्थिति में जप करने से वे समस्त सम्पत्तियों को प्राप्त कर लेती हैं ॥१२॥

विपरीतरतौ जप्त्वा कालीवद् विहरेत् भुवि ।
विपरीतरता काली विपरीता च तारिणी ।
विपरीता च या वेश्या सा काली नात्र संशयः ॥१३॥

वे विपरीत रति स्थिति में जप करते हुये काली के समान पृथ्वी पर विचरण करती रहती हैं । काली हैं विपरीतरता, तारिणी भी उसी प्रकार की हैं । जो वेश्या विपरीता है, वह निःसंदिग्ध रूप से काली ही है ॥१३॥

योषिद्विद्या न सिध्यन्ति विपरीतरतिं बिना ।
विपरीतरता वेश्या त्रिषु लोकेषु पूजिता ॥१४॥

विपरीत रति के बिना स्त्री को विद्या सिद्ध नहीं होती । विपरीतरता वेश्या तीनों लोकों में पूज्यनीया है ॥१४॥

गाढ़मालिङ्गनं दत्त्वा चुम्बयित्वा पुनः पुनः ।
कटाक्षैः दर्शयेद् यन्त्रं दक्षिणां कौलिकीरिता ॥१५॥

जो गाढ़ आलिंगन करके पुनः पुनः चुम्बन करते हुये, कटाक्ष से यन्त्र का दर्शन कराती हैं, वे ही कौलिकी हैं ॥१५॥

एवम्बिधा पुरश्चर्या वेश्यायाश्च कुलेश्वरि ।
एवम्बिधा भवेद्वेश्या न वेश्या कुलटा प्रिये ॥१६॥

हे कुलेश्वरी ! वेश्या का यही पुरश्चरण कहा गया है । इसी प्रकार की (पुरश्चरण युक्त) स्त्री को ही यहाँ पर वेश्या कहते हैं । जो प्रचलित लोक-भाषा में कुलटा कहीं जाती है, यहाँ उस वेश्या से तात्पर्य नहीं है ॥१६॥

कुलटासङ्गमादेव रौरवं नरकं व्रजेत् ।
वीरशक्तिर्भवेद् वेश्या सा शस्ता स्वस्वसाधने ॥ १७ ॥

कुलटा के साथ संगम करने से रौरव नरक की प्राप्ति होती है । जो वीर साधक की शक्तिरूपी वेश्या हैं, वे ही अपने साधन में विहित हैं ॥ १७ ॥

शिवलिङ्गगता साध्वी शिवलिङ्गगता सती ।
शिवलिङ्गगता वेश्या कीर्त्तिता सा पतिव्रता ॥ १८ ॥

तांत्रिक साधना में इन सभी वेश्याओं को नियुक्त करे जिनका उपर वर्णन किया जा चुका है । जो शिवलिंगगता हैं, वे ही वेश्या-साध्वी एवं पतिव्रता हैं ॥ १८ ॥

योनिश्च जनिका माता लिङ्गश्च जनकः पिता ।
विभाव्य पितरौ भावं उभयोः परिचिन्तनम् ॥ १९ ॥

योनि ही सन्तान देने वाली माता तथा लिंग पिता है । योनि तथा लिंग का मात-पितारूप से चिन्तन करे । इससे योनि तथा लिंग की चिन्ता (इनके प्रति आसक्ति) दूर हो जाती है और जगत् की माता काली एवं जगत् पिता शिव के चिन्तन का उदय हो जाता है ॥ १९ ॥

लिङ्गरूपो महाकालो योनिरूपा च कालिका ।
तयोर्योगपरा धन्या तयोर्योगपरो महान् ॥ २० ॥

महाकाल लिंगरूपी हैं तथा कालिका योनिरूपा हैं । इन दोनों के योग (सामरस्य) का चिन्तन करने वाली स्त्री धन्य है और इनका चिन्तन करने वाला पुरुष महान् है ॥ २० ॥

स्वभैरवं बिना वेश्या शिवपूजां करोति या ।
रौरवे नरके घोरे वसेदाहूतसम्प्लवम् ॥ २१ ॥

जो वेश्या अपने भैरव (के साथ के) बिना शिवपूजा करती है, वह तब तक रौरव नरक को प्राप्त होती है जबतक प्रलय नहीं हो जाता ॥ २१ ॥

स्वभैरवीं विना वीरो मनसा नैव संस्मरेत् ।
स्मरेच्च नरकं याति महाव्याधिपरो भवेत् ॥ २२ ॥

वीर साधक को चाहिये कि अपनी भैरवी के अतिरिक्त किसी भी स्त्री का मन से भी चिन्तन न करे । यदि चिन्तन करता है, तब उसे नरक प्राप्ति तथा महाव्याधि से ग्रस्त होना निश्चित है ।। २२ ॥

नानावीराश्रिता वेश्या पशुवेश्या कुलेश्वरि ।
सा वेश्या नरकं याति सत्यं सत्यं न संशयः ॥ २३ ॥

हे कुलेश्वरी ! जो वेश्या अनेक वीर साधकों का साथ करती है, वह पशु वेश्या है । यह नि.संदिग्ध है कि ऐसी वेश्या नरक प्राप्त करती है ।। २३ ॥

कामाद्वा लोभतो वापि धनाद्वा वरवर्णिनि ।
नानावीराश्रिता वेश्या वेश्या च नरकं व्रजेत् ।। २४ ॥

हे वरवर्णिनी ! जो वेश्या काम अथवा लोभ के वशीभूत होकर या धन की लालच में नाना वीर साधकों का आश्रय लेती हैं, वह अवश्य नरक में जाती है ॥ २४ ॥

नानावीराश्रिता वेश्या पशुसङ्गता च या ।
वर्जनीया प्रयत्नेन कुलसाधनकर्मणि ।
योज्या चेत् सिद्धिहानिः स्याद् भ्रष्टवेश्या कुलार्चने ॥ २५ ॥

जो वेश्या नाना वीरसाधकों का आश्रय लेती है अथवा जो पशुभाव के साधकों का साथ करती है, ऐसी वेश्या को हर प्रकार के कुल साधन में वर्जित माना गया है । ऐसी भ्रष्ट वेश्या को कुल साधना में नियुक्त करने से कुलपूजा नष्ट हो जाती है ॥ २५ ॥

रोगः शोको भवेत्तस्य धनहानिः क्षणे क्षणे ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन स्वशिवञ्च समाश्रयेत् ।। २६ ॥

उस भ्रष्ट वेश्या के साथ साधना (नियोग) करने से शोक तथा धनहानि क्षण-क्षण में होती है । अतः वेश्या को चाहिये कि वह अपने शिब (भैरव) का ही आश्रय ले ॥ २६ ॥

जपपूजादिकं वेश्या स्वशिवे परिकल्पयेत् ।
पुष्पिता काममापन्ना सदा रमणमिच्छुका ।
सर्वसिद्धिप्रदा वेश्या कालिकारूपधारिणी ।। २७ ॥

वेश्या को चाहिये कि वह अपने भैरव की पूजा आदि करे । वह वेश्या रजस्वला (पुष्पित) होने पर कामभाव को प्राप्त करके रमणेच्छु होकर सर्वसिद्धिप्रदा कालिका के समान हो जाती है ॥ २७ ॥

पितृभूमिः समाख्याता सदाशिवनिवासिनी ।
शिव एव नरो ज्ञेयो लिङ्गरूपधरो यतः ॥ २८ ॥

श्मशान भूमि को सदाशिव का निवास कहते हैं । मनुष्य को शिव कहते हैं, क्योंकि वह लिंग रूपधारी है ॥ २८ ॥

शिवस्थानं श्मशानं स्यात् श्मशानं कुलजं गृहम् ।
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ।
श्मशाने नागते चार्चेत् अवश्यं पशुवद्भवेत् ॥ २९ ॥

श्मशान शिव का स्थल है । वही है कुलगुरु का घर । यदि साधक शुक्ल तथा कृष्णपक्ष की अष्टमी एवं चतुर्दशी को श्मशान में जाकर अर्चना (साधना) नहीं करता, उस स्थिति में वह पशुवत् है ॥ २९ ॥

तन्मन्त्रं पूजितं येन सर्वं मन्त्रं प्रपूजितम् ।
तत्र संजप्य देवेशि निर्वाणपदवीं व्रजेत् ॥ ३० ॥

जो साधक शिव मन्त्र की पूजा करते हैं, वे समस्त मन्त्रों की पूजा का फल प्राप्त करते हैं । हे देवेशी ! श्मशान में उस मन्त्र का जप करने से मोक्ष मिलता है ॥ ३० ॥

मातृमुखे पितृमुखं दत्त्वा जपेत् काली सनातनीम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो निर्वाणपदवीं व्रजेत् ॥ ३१ ॥

शिव एवं काली की अभेदावस्था (सामरस्यावस्था) से जो नित्या (सनातनी) काली का जप करते हैं, वे सब प्रकार के पापों से रहित होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ३१ ॥

परस्मिन् गुप्तवेश्या वाप्यथवा कुलीनो भवेत् ।
शुक्रोत्सारणकालन्तु निर्वाणं विद्धि पार्वति ।। ३२ ।।

ऐसे साधक अथवा साधिका अगले जन्म में गुप्तवेश्या अथवा कुलीन रूप से (कुलसाधक रूप से) जन्म लेते हैं । हे पार्वती ! शुक्रोत्सारण (जब साधना पुरश्चरण सम्पन्न हो जाता है) को निर्वाण कहते हैं ।। ३२ ।।

शुक्रोत्सारणकालन्तु कायेन मनसापि वा ।
अङ्गभङ्गक्रमेणैव कुलीनाय प्रकाशयेत् ।। ३३ ।।

इस शुक्रोत्सारण काल को ही फल प्राप्त करने की इच्छा रखने वालों को महान् काल रूप से जानना चाहिये । शरीर द्वारा मन के द्वार अथवा शरीर भंगिमाओं के द्वारा (शक्तिपात द्वारा) तन्त्रसिद्ध पुरुषों के सम्मुख ही इसका प्रकाशन करना चाहिये ।। ३३ ।।

(साधनविशेषकालवर्णनम्)

शुक्रोत्सारणकालस्य ज्ञापनात् कालिका स्वयम् ।
जपाङ्गे कालिका देवी महाकालं विमोहयेत् ।। ३४ ।।

(साधनविशेष का काल)

इस शुक्रोत्सारण काल का ज्ञान प्राप्त करके देवी कालिका आलिंगनादि (जपाङ्ग) द्वारा स्वयं महाकाल को विमोहित करती हैं ।। ३४ ।।

कुलीना ब्रह्मवेश्या चेन्नाल्पस्य तपसः फलम् ।
बहुना जन्मनामन्ते ब्रह्मवेश्या प्रजायते ।। ३५ ।।

कुलीना (तांत्रिक साधना जाननेवाली) का ब्रह्मवेश्या पदवी प्राप्त कर लेना सरल नहीं है । अनेक जन्मों के उपरान्त कुलीना को यह पद मिलता है ।। ३५ ।।

त्वत्समा प्रकृतिः काचिद् यदस्ति भुविमण्डले ।
न (त्वन्या) तथा तत्समा शक्तिस्त्रिषु लोकेषु गीयते ।। ३६ ।।

यदि तुम्हारे समान कोई स्त्री (प्रकृति) पृथ्वी में है, तब उसे ही ब्रह्मवेश्या मानो । किन्तु उस कुलीना ब्रह्मवेश्या के अतिरिक्त और कोई भी प्रकृति तीनों लोकों में नहीं है ।। ३७ ।।

सा चैव दक्षिणा काली मदनातुरविह्वला ।
वेदेभ्यो जायते कर्म कर्मणा बन्धनं भवेत् ।
वैदिकं कर्म सन्तज्य सुरतेषु सदा जपेत् ।। ३७ ।।

वह कुलीना ब्रह्मवेश्या मदनातुरा, विह्वला, दक्षिणाकालिका रूपिणी है । वेद द्वारा कर्म की उत्पत्ति तथा वेद द्वारा पुनः बन्धन होता है । अतः वैदिक कर्म का त्याग करके काली एवं शिव के (सुरत) ध्यान में तन्मय होकर जप करना चाहिये ।। ३७ ।।

आगमोक्तपतिः शम्भुरागमोक्तपतिर्गुरुः ।
स्वपतिः कुलजायाश्च न पतिश्च विवाहितः ।। ३८ ।।

आगम में कहे गये साधनों के पति शम्भु तथा गुरु हैं । (गुरु एवं शम्भु में ऐक्य के उद्देश्य से यह कहा गया है) । कुलजा (कुलसाधनालीन) स्त्री के पति ही शिव हैं । विवाहित पति कदापि शिव नहीं है । अर्थात् कुलसाधक भैरव ही शिव एवं पति हैं ।। ३८ ।।

विवाहितपतित्यागे दूषणं न कुलार्चने ।
विवाहितं पतिं नैव त्यजेद् वेदोक्तकेर्मणि ।। ३९ ।।

कुलपूजा में विवाहित पति का त्याग करना दोष नहीं है, परन्तु वैदिक कर्म करने वालों के लिये अथवा वेदोक्त कर्म में विवाहित पति का त्याग कदापि न करे ।। ३९ ।।

आगमोक्तपतिस्त्राता आगमोक्तपतिः शिवः ।
सिद्धविद्या न सिध्यन्ति आगमोक्तपतिं बिना ।।४०।।

आगमोक्त पति ही वास्तव में शिव तथा त्राणकर्त्ता हैं । इनकी कृपा के बिना काली मन्त्र रूपी सिद्धविद्या सिद्ध नहीं हो सकती ।।४०।।

आगमोक्तपतिर्देवि योषितां मोक्षदायकः ।
कालीं नैव यजेद् योषिदागमोक्तपतिं बिना ॥४१॥

हे देवी ! यथार्थतः तंत्रोक्त पति ही स्त्रीगण को मोक्ष देते हैं । आगमोक्त पति के बिना स्त्री को काली पूजा नहीं करना चाहिये ॥४१॥

कुलजा गुरवे देवि पतित्वे वरणञ्चरेत् ।
तदा सा गुप्तवेश्या स्यात् कुलजा च पतिं बिना ॥४२॥

हे देवी ! कुलजा स्त्री को चाहिये कि वह गुरु का ही पतिरूप में वरण करे । ऐसी स्थिति में वह स्त्री बिना पति के ही गुप्तवेश्या हो जाती हैं ॥४२॥

गुप्तवेश्या भवेत् सैव कुलमार्गप्रवर्त्तिता ।
कुलमार्गप्रसक्ता या सा मुक्ता नात्र संशयः ॥४३॥

गुरु को पतिरूप में वरण करने वाली कुलजा स्त्री तो गुप्तवेश्या हो जाती है और कुलमार्गगामिनी कही जाती है । जो स्त्री कुलमार्ग का पालन करने वाली है, वह निःसंदिग्ध रूप से मुक्त है ॥४३॥

कुलजा गुरवे देवि यदि न स्यात् पतिच्छुका ।
तस्या शिवो महाकाल सत्यं सत्यं न संशयः ॥४४॥

हे देवी ! यदि कुलजा स्त्री गुरु को पति नहीं मानती, तब महाकाल शिव ही उसके पति होते हैं । यह सत्य है एवं निसंदिग्ध है ॥४४॥

षोडशाब्दा सदा सा स्यात् काली विक्रमतत्परा ।
तारा पञ्चदशाब्दा चेत् चतुर्दशाब्दा च सुन्दरी ॥४५॥

जिसके पति महाकाल शिव हो जाते हैं, ऐसी स्त्री यदि १६ वर्ष की है उस स्थिति में वह विक्रम करने में तत्पर काली ही है । १५ वर्ष की ऐसी स्त्री को तारा के समान और १४ वर्ष वाली को षोडशी देवी के समान माना गया है ॥४५॥

त्रयोदशी चोन्मुखी सा द्वादशाब्दा च भैरवी ।
एकादशगुणोपेता ब्रह्मवेश्या कुलेश्वरि ॥४६॥

महाकाली समाख्याता त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ।
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले या यास्तिष्ठन्ति चाङ्गनाः ।
सर्वासामपि भर्त्ता च दिव्यो वीरश्च साधकः ॥४७॥

तेरह वर्ष वाली उन्मुखी तथा बारह वर्ष वाली भैरवी के समान हो जाती है । हे कुलेश्वरी ! ग्यारह वर्ष वाली (ऐसी कन्या) को ब्रह्मवेश्या कहा गया है । वही स्त्री तीनों लोकों में दुर्लभा महासाध्वी हो जाती है । स्वर्ग, मृत्युलोक तथा पाताल में जितनी भी स्त्री हैं, सब के पति हैं दिव्यसाधक अथवा वीर साधक ॥४६-४७॥

योगी दिव्यो यदा वीरः सर्वनारीपतिर्भवेत् ।
दिव्योऽपि वीरभावेन सर्वंजात्युद्भवां यजेत् ॥४८॥

जब वीरसाधक की उन्नति दिव्यभाव साधक पद पर हो जाती है, तब वह समस्त नारियों का पति हो जाता है और दिव्यभाव का साधक वीरभाव का आश्रय लेकर समस्त जातियों में उत्पन्न स्त्री की पूजा का अधिकारी हो जाता है ॥४८॥

गुप्तवेश्या महावेश्या अयोध्या मथुराप्रिये ।
माया च कुलवेश्या स्यात महावेश्या च कालिका ॥४९॥
राजवेश्या देववेश्या स्यात् देववेश्या अवन्तिका ।
द्वारावती ब्रह्मवेश्या सप्तैता मोक्षदायिका ॥५०॥

हे प्रिये अब वेश्याओं का सप्ततीर्थत्व सुनोः—

गुप्तवेश्या = अयोध्या । महावेश्या = मथुरा ।

कुलवेश्या = हरिद्वार कनखल । महावेश्या = कालिका (काशी), राजवेश्या एवं देववेश्या = द्वारिका । राजवेश्या = काञ्चीपुरी, देववेश्या—अवन्ती । ब्रह्मवेश्या = द्वारावती । ये सातो मोक्षदायिनी हैं ॥४९-५०॥

कुलीनां भगवती साक्षाद् काली तारा सरस्वती ।
कुलीना भैरवी राधा कुलीना छिन्नमस्तका ॥५१॥

तांत्रिक कुलाचार युक्त स्त्री साक्षात् भगवती, काली, तारा, भैरवी, राधा, कुलीना छिन्नमस्तका है ॥५१॥

कुलीना सुन्दरी देवि कुलीना महिषमर्दिनी ।
कुलीना भुवना बाला कुलीना बगलामुखी ॥५२॥

हे देवी ! कुलीना ही सुन्दरी, महर्षिमर्दिनी, भुवनेश्वरी, बाला एवं बगलामुखी है ॥५२॥

धूमावती कुलीना च मातङ्गी कुलीना प्रिये ।
कुलीना चान्नपूर्णा च त्रिपुटा त्वरिता तथा ॥५३॥

हे प्रिये वही धूमावती, मातङ्गी, धूमावती है। वह अन्नपूर्णा, त्रिपुटा एवं त्वरिता भी है ॥५३॥

पतिव्रता कुलीना च सती साध्वी महोदया ।
कुलीना मन्त्रतन्त्राणां सिद्धिदा नात्र संशयः ॥५४॥

कुलीना ही पतिव्रता, सती, साध्वी तथा महोदया है । यह निःसंदिग्ध है कि वही मन्त्र-तंत्र में सिद्धिप्रदा भी है ॥५४॥

कुलजा देवकन्या च कुलीना योगिनीगणाः ।
रम्भौर्वशी रतीरामा तिलोत्तमा कुलसुन्दरि ।
एताः सर्वाः पृथग् वेश्या विहरन्ति कुलात्मजा ॥५५॥

कुलीना देवकन्या रूपा हैं । वे ही योगिनीरूपा भी हैं । हे कुलसुन्दरी ! रम्भा, उर्वशी, रति, रम्भा, तिलोतमा रूपी पृथक्-पृथक् वेश्यायें भी कुलकन्या रूपेण विचरती रहती हैं ॥५५॥

कुलजाः कुलवेश्या याः कुलधर्मपरायणाः ।
पशुर्भर्त्ताश्रिता लोके कामकौतुकलालसाः ॥५६॥
कुलवर्त्मक्रमेणैव सदैव रमणोत्सुकाः ।
विदग्धा बीरभावेन वीरगोपनतत्पराः ।
विहितान्यां हीनजातां पूजयेदथवा यतः ॥५७॥

कुलजा ही कुलवेश्या तथा कुलधर्म परायणा हैं । वे पशुभाव के पति का आश्रय लेकर लोक में काम-कौतुक लालसा युक्त होकर कुलमार्ग क्रम से सर्वथा रमण हेतु उत्कण्ठित रहती हैं, अथवा वीरभाव वाली चतुरा वेश्या वीरपति को अपना कर उसे गुप्त रखती हैं, ये सब पृथक्-पृथक् विचरण करती रहती हैं, अथवा वे तंत्रशास्त्र के अनुसार भिन्न हीनजाति की (साधक की) इसी हेतु पूजा करती हैं ॥५६-५७॥

ब्रह्मचारी गृहस्थोपि विहितान्यां न चार्चयेत् ।
अर्चयेत् सिद्धिहानिः स्याद् दुःखं तस्य पदे पदे ॥५८॥
हीनजां विहितां वेश्यां मनसा च प्रपूजयेत् ।
तद्योगं चिन्तयेद्धीमान् शतमष्टोत्तरं जपेत् ॥५९॥

ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ को भी शास्त्रविहित वेश्या के अतिरिक्त अन्य की पूजा नहीं करनी चाहिये, अन्यथा सिद्धिहानि एवं पग-पग पर दुःखभागी होना पड़ता है। अतः हीनजाति की शास्त्रविहित वेश्या का मन ही मन चिन्तन करते हुये १०८ बार जप करे ॥५८-५९॥

जप्त्वा प्रणम्य देवेशि भक्ष्यद्रव्यं निवेदयेत् ।
कामाद्वा मोहतो वापि हीनजां यदि चेच्छति ।
रौरवं नरकं याति हीनजासङ्गमेन च ॥६०॥

हे देवेशी ! जप करके प्रणाम करये हुये उसे भोजनद्रव्य अर्पित करे। यदि हीनजाता वेश्या की कामना मोह अथवा काम भाव से की जाती है तब रौरव नरक अवश्य मिलता है ॥६०॥

हीनजासङ्गमं देवि मनसा न स्मरेत् कलौ ।
कुलकर्मप्रवृत्ता या सा मुक्ता नात्र संशयः ॥६१॥

हे देवी ! कलिकाल में हीनजा से संङ्गम करने की इच्छा मन में भी करना अविहित है। जो हीनजाता तांत्रिक आचार में प्रवृत्त है, वह मुक्त है; इसमें तनिक भी सन्देह नहीं करना चाहिये ॥६१॥

कुलजा कुलवेश्या च वीरमेकं समाश्रयेत् ।
सन्तज्य पशुभर्त्तारं कुलमार्गे प्रवेशयेत् ॥६२॥

तांत्रिक कुल में उत्पन्न कुलवेश्या को चाहिये कि एक वीर साधक का आश्रय ले। पशुभाव वाले पति को त्याग कर वीर साधन में प्रवृत्त हो जाये ॥५२॥

(कुलीनाया गुणवर्णनम्)

कुलमार्गं समाश्रित्य वीरमेकं समाश्रयेत् ।
कुलमार्गप्रवृत्ता चेत् पतिहीना भवेद यदि ।
कुलजा वा कुलीना वा परजन्मनि जायते ॥६३॥

(कुलीना के गुणों का वर्णन)

वेश्या को कुलमार्ग का आश्रय लेकर एक ही वीरसाधक का आश्रय लेना चाहिये । यदि वह स्वामीरहित है, तब अगले जन्म में अच्छे वंश में जन्म लेती है, किंवा वीरभाव के साधन का आश्रय लेती है ॥६३॥

कुलधर्मरता शस्ता कुलधर्मोत्सुका तथा ।
पूजार्हा सा महेशानि पतिहीनां प्रपूजयेत् ॥६४॥

हे महेशानी ! कुलधर्मरता स्त्री तभी श्रेष्ठा है, जब वह कुलधर्म के प्रति लगन वाली होती है। ऐसी स्त्री पतिहीना होने पर भी पूजन योग्य है ॥६४॥

लोकाचारक्रमेणैव पूजार्हा लङ्घिता यदि ।
तां विहाय कुलेशानि कुलजाञ्च प्रपूजयेत् ॥६५॥

हे कुलेशानी ! यदि लोकाचार के कारण ऐसी स्त्री पूजा योग्य न हो, तब उसका त्याग करके सद्वंशोत्पन्न स्त्री की पूजा करे ॥६५॥

गङ्गास्मरणमात्रेण यथा पापक्षयो भवेत् ।
कुलजा च कुलीनाय मन्त्रतन्त्रफलप्रदा ॥६६॥

जैसे गंगा का स्मरण करने मात्र से पापक्षय होता है; उसी प्रकार सद्वंश में उत्पन्न कन्या तन्त्र साधक के मन्त्रतन्त्र का फल देने वाली हो जाती है ॥६६॥

महावेश्या भवेत् सैव सर्ववेश्या फलप्रदा ।
यासाञ्च सर्वविद्यानां प्रशस्ता या कुलार्चने ॥६७॥

ऐसी कुलीना ही महावेश्या है, वह सर्ववेश्या का फल देती है । जो समस्त विद्याओं में कुलपूजन हेतु पूज्यतरा मानी गयी है, वही सर्ववेश्या है ॥६७॥

कुलीनादर्शनेनैव सर्वपापक्षयो भवेत् ।
कुलजानां पुरश्चर्या कुलीनावत् कुलेश्वरि ॥६८॥

कुलीना के दर्शन से समस्त पापों का क्षय हो जाता है । हे कुलेश्वरी ! कुलीना का पुरश्चरण जैसा है, वैसा ही सत्कुल में उत्पन्न (कुलजा) का पुरश्चरण होता है ॥६८॥

सर्ववेश्या हीनजा च सर्वसिद्धिप्रदायिनी ।
अनेकजन्मनामन्ते कुलधर्मः प्रवर्त्तते ॥६९॥

हीन जाति में उत्पन्न सर्ववेश्या को समस्त सिद्धि देने वाली कहा गया है । अनेक जन्मों के उपरान्त व्यक्ति कुलमार्ग में प्रवेश पाता है ॥६९॥

कुलधर्मं बिना देवि न च मोक्षः प्रजायते ।
कुलपूजां बिना देवि सुन्दरी नैव सिद्ध्यति ।
कुलपूजां बिना देवि लक्ष्मी नैव सिध्यति ॥७०॥

हे देवी कुल धर्म के बिना मुक्ति नहीं मिलती, इसके बिना सुन्दरी विद्या प्राप्त नहीं होती और लक्ष्मी सिद्ध नहीं होती ॥७०॥

कुलपूजां बिना देवि भैरवी न सिध्यति ।
कुलपूजां बिना देवि छिन्नमस्ता न सिध्यति ॥७१॥
कुलपूजां बिना देवि कालीकुलं न सिध्यति ।
कुलपूजां बिना देवि तत्वज्ञानं न जायते ॥७२॥

हे देवी ! कुल साधन के बिना भैरवी, छिन्नमस्ता, कालीकुल की सिद्धि नहीं मिलती और तत्वज्ञान भी अप्राप्त रह जाता है ॥७१-७२॥

तत्वज्ञानं बिना देवि निर्वाणं नैव जायते ।
निर्वाणं श्रेयसं प्राप्य मम योगः प्रजायते ॥७३॥

हे देवी ! तत्वज्ञान के अभाव में निर्वाण नहीं प्राप्त होता। निर्वाण तथा श्रेय की प्राप्ति के पश्चात् मुझसे योग होता है ॥७३॥

निर्वाणं श्रेयसश्चापि मूलञ्च कुलमन्दिरम् ।
पञ्चमैः पूजयेत् कालीं कुलीनां कुलमन्दिरे ॥७४॥

निर्वाण तथा श्रेय ही क्रमशः अपरा एवं परा मुक्ति है। इन दोनों का मूल है वीर या दिव्य भाव की साधना का स्थल (कुल मन्दिर), जहाँ मैथुन साधना के द्वारा कुलीना काली की पूजा करे अथवा वीरभाव के साधक के घर में उक्त कालीपूजन करे ॥७४॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
इन्द्रादिदशदिक्पाला आदित्यादिनवग्रहाः ॥७५॥
असिताङ्गादयो ये ये भैरवाश्च सुरादयः ।
कुलपूजाकृताः सर्वे कृतार्थाः कुलीना गृहे ॥७६॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, इन्द्र आदि दिक्पाल, आदित्य आदि नवग्रह, असिताङ्ग आदि भैरवगण तथा सुरगण दिव्य अथवा वीरभाव की साधना में सिद्ध के गृह में कुलपूजा करके कृतार्थ हो गये। ऐसी पूजा करके वे वास्तव में कुलीन हुये ॥७५-७६॥

शक्तिं बिना महेशानि शक्तिमन्त्रो न सिध्यति ।
सर्वेषां शक्तिमन्त्राणां शक्तिः सिद्धिप्रदायिनी ॥७७॥

हे महेश्वरी ! शक्तिरूपिणी स्त्री के बिना शक्तिमन्त्र सिद्ध नहीं होता। शक्ति ही समस्त सक्तिमन्त्रों में सिद्धिप्रदा है ॥७७॥

नटी कापालिका वेश्या रजकी नापिताङ्गना ।
योगिनी श्वपची शौण्डी भूमीन्द्रतनया तथा ।
गोपिनी मालिका रम्या आसां कार्यविभेदतः ॥७८॥

कार्य भेद से विभिन्न स्त्री नटी, कापालिका, वेश्या, धोबिन, नाऊ की कन्या, योगिनी, चाण्डालिनी, शौण्डी, राजकन्या, गोपिनीं तथा मालिन हो जाती हैं ॥७८॥

चतुर्वर्णोद्भवा रम्या कापाली सा प्रकीर्त्तिता ।
पूजा द्रव्यं समालोक्य नृत्यगीतपरायणा ।
चतुर्बर्णोद्भवा रम्या सा नटी परिकीर्त्तिता ॥७९॥

ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य तथा शूद्र वर्ण में पैदा हुई कन्या कापाली कही जाती है। इन वर्णों में उत्पन्ना जो सुन्दरी कन्या (जो पुरश्चरणयुक्त कन्यायें हैं) पूजा द्रव्य (चक्रपूजा द्रव्य) का दर्शन करके नृत्य गीत आदि करने लगती है, उसे नटी कहते हैं ॥७९॥

पूजाद्रव्यं समालोक्य वेश्या रमणमिच्छता ।
चतुर्वर्णोद्भवा रम्या सा वेश्या परिकीर्त्तिता ॥८०॥

पूजा द्रव्य का दर्शन करके जो वेश्या (तंत्रोक्तवेश्या) जैसी रमण की इच्छा करती है, चातुर्वर्ण में उत्पन्ना वह सुन्दरी कन्या ही यथार्थ वेश्या है ॥८०॥

पूजाद्रव्यं समालोक्य रजोऽवस्थां प्रकाशयेत् ।
सर्ववर्णोद्भवा रम्या रजकी सा प्रकीर्त्तिता ॥८१॥

पूजाद्रव्य को देखकर जिसकी रजः अवस्था (रजस्वला स्थिति) हो जाती है, वह चातुर्वर्ण में उत्पन्ना सुन्दरी कन्या ही रजकी है ॥८१॥

पूजाद्रव्यं समालोक्य कुलजा वीरमाश्रयेत् ।
सन्तज्य पशुभर्त्तारं कर्मचाण्डालिनी स्मृता ॥८२॥

पूजाद्रव्य को देखकर जो कुलजाता कन्या पशुभावापन्न साधक को छोड़कर वीरभावान्वित साधक को पति मानती है, उसे ही चाण्डाली कहते हैं ॥८२॥

शिवशक्तिसमायोगा योगिनी सा व्यवस्थिता ।
विपरीतरता पत्यौ पात्रं या परिपृच्छति ।
सर्ववर्णोद्भवा रम्या सा शौण्डी परिकीर्त्तिता ॥८३॥

जो शिवशक्ति की सामरस्यावस्था का ध्यान करके योगिनी हो जाती है और जो पति के साथ विपरीत रति की स्थिति में जिज्ञासा करती है, ऐसी समस्त वर्णों में उत्पन्ना सुन्दरी कन्या को शौण्डी कहते हैं ॥८३॥

सर्वदा यन्त्रसंस्कारो यस्याश्च परिजायते ।
सैव भूमीन्द्रजा रम्या सर्ववर्णोद्भवा प्रिये ॥८४॥

हे प्रिये ! जो सर्वदा यन्त्र संस्कार करती रहती है, ऐसी समस्त वर्णों में उत्पन्ना सुन्दरी कन्या राजतनया (भूमिन्द्रजा) कहते हैं ॥८४॥

अथान्यं गोपयेद् या तु सर्वदा पशुसङ्कटे ।
सर्ववर्णोद्भवा रम्या गोपिनी सा प्रकीर्त्तिता ॥८५॥

जो कन्या पशुभाव के साधक के साथ संकटापन्न होकर, हटकर (वीरभावापन्नसाधक के पास) गुप्त हो जाती है, ऐसी समस्त वर्णों में उत्पन्ना कन्या कोही गोपिनी कहलाती है ॥८५॥

पूजाद्रव्यं समालोक्य या मनौ परिकीर्त्तिता ।
सर्ववर्णोद्भवा रम्या मालिनी सा प्रकीर्त्तिता ॥८६॥

जो कन्या पूजाद्रव्य को देखकर मन्त्रों का कीर्त्तन करने लगती है, ऐसी समस्त वर्णों में उत्पन्न कन्या ही मालिनी कहलाती है ॥८६॥

शक्त्यभावे महेशानि यासाञ्च काञ्चिदाहरेत् ।
संशोध्य पञ्चमं तत्वं तर्पयेत् कुलसुन्दरि ॥८७॥

हे महेशानी ! हे कुलसुन्दरी ! जिस साधक के पास शक्ति (स्त्री) न हो, वह पूर्वोक्त १० प्रकार की किसी भी शक्ति में से एक को लाकर अपने पंचम तत्व (वीर्य) द्वारा तर्पण करे ॥८७॥

(उर्ध्वरेतस् होना ही वीर्य द्वारा परमशिव का तर्पण है ।)

अङ्गुष्ठानामिकायोगाद् वामहस्तस्य पार्वति ।
तर्पयेत् कालीकां वीरः सायुधां परिवाहनाम् ॥८८॥

हे पार्वती ! वीर साधक बायें हाथ के अंगूठे एवं अनामिका के योग से (जोड़ कर) आयुध युक्त तथा वाहन पर आसीन कालिका का तर्पण करें ॥८८॥

अङ्गुष्ठो भैरवो देवः अनाम शक्तिरुच्यते ।
शिव शक्तिसमायोगात्तर्पयेद्देवि दक्षिणाम् ॥८९॥

हे देवी ! अंगूठा भैरव है और अनामिका ऊंगली ही शक्ति है । इस शिव शक्ति (भैरव + शक्ति) के योग से दक्षिणा कालिका का तर्पण करें ॥८९॥

श्रेष्ठञ्च दिव्यभावस्य वीरभावस्य मध्यमम् ।
कनीयांसं पशूनाञ्च हृदि यन्त्रे जले क्रमात् ॥९०॥

हे देवी ! दिव्यभाव का तर्पण उत्तम, वीरभाव का मध्यम तथा पशुभाव का तर्पण कनिष्ठ कहा गया है । दिव्यभाव का तर्पण हृदय में, वीरभाव का पूजायन्त्र में तथा पशुभाव का जल में तर्पण होता है ॥९०॥

चतुर्दश पटल समाप्त

पञ्चदशः पटलः

श्री देव्युवाच

देवदेव महादेव कुलमार्गप्रकाशक ।
पञ्चमं कीदृशं द्रव्यं तेषां शुद्धिस्तु कीदृशी ।
तत् प्रकाशय सम्यङ्गमे मयि नाथ कृपा कुरु ॥१॥

श्री देवी कहती हैं—हे देवाधिदेव । महादेव ! हे कुलमार्ग के प्रकाशक ! पञ्च द्रव्य क्या है ? उनकी शुद्धि कैसे होती है ? हे नाथ ! कृपा करके इसका सम्यक् रूप से प्रकाशन करिये ॥१॥

श्री शिव उवाच

मद्यं मांसं तथा मीनं मुद्रा मैथुनपञ्चमम् ।
एषां शुद्धि प्रवक्ष्यामि मन्त्रकोषक्रमेण च ॥२॥

श्री शिव कहते हैं—मद्य-मांस-मत्स्य-मुद्रा तथा मैथुन ही पंच द्रव्य हैं । मन्त्रों के वर्णन के उपरान्त इनकी शुद्धि का क्रम कहा जायेगा ॥२॥

निशीथे मुक्तकेशञ्च स्वकुलं वामभागतः ।
संस्थाप्य न्यासजालञ्च तद्गात्रे विन्यसेत् क्रमात् ॥३॥

मध्यरात्रि में अपनी शक्ति को मुक्तकेशी रूप में (जिसके बाल खुले हुये हों) अपनी बाईं ओर बैठायें । उसके अंगों में अंगन्यास आदि क्रमशः करें ॥३॥

स्वगात्रे च ततो न्यस्य न्यास जालक्रमेण च ।
भूतशुद्धिविधेया च वर्णन्यासं ततश्चरेत् ॥४॥

तदनन्तर अपने शरीर में भी क्रमशः न्यास करके भूतशुद्धि करे । भूतशुद्धि के अनन्तर वर्णन्यास भी करें ॥४॥

अङ्गन्यासकरन्यासौ लिपिन्यासन्तु तत्परम् ।
ततोऽन्तर्मातृकां कृत्वा मातृकान्यासमाचरेत् ॥५॥

तदनन्तर अङ्गन्यास, करन्यास, लिपिन्यास और अन्तर्मातृकान्यास करके वाह्य मातृन्यास करें ॥५॥

प्रणायामं ततः कृत्वा ऋषिन्यासं ततः परम् ।
पीठन्यासं व्यापकञ्च कालीकुलस्य पूजने ॥६॥

तदनन्तर प्राणायाम करके ऋष्यादिन्यास करे । तत्पश्चात् पीठन्यास, व्यापकन्यास करना चाहिये । कालीकुल पूजा की यही न्यास विधि है ॥६॥

क्रमभङ्गो भवन्नैव भवेच्च विफलं ध्रुवम् ।
जपपूजादिकं कर्म सर्वं निष्फलतामियात् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन क्रमभङ्गं न कारयेत् ॥७॥

न्यास आदि के जिस क्रम को कहा गया है वह कदापि भंग नहीं होना चाहिये । क्रमभंग होने से न्यासादि निष्फल हो जाते हैं । जप पूजादिक समस्त कर्म निष्फल हो जाते हैं । अतः क्रम का भंग न हो, यह प्रयत्न करते रहना चाहिये ॥७॥

जीवन्यास व्यापकादौ विद्याराज्ञीं प्रपूजयेत् ।
षोडान्यासं नीलकण्ठं कामञ्च परिकीर्त्तितम् ।
ततो ध्यात्वा महाकालीं मानसैः परिपूजयेत् ॥८॥

व्यापकन्यास के आरम्भ में जीवन्यास करके विद्या की अधिष्ठातृ कालिका का पूजन करे । षोडान्यास, नीलकण्ठन्यास तथा कामन्यास करना चाहिये । इनको करने के उपरान्त महाकाली की मानस पूजा करें ॥८॥

ततश्च पञ्चमं शुद्धं विशेषार्घ्यं ततः परम् ।
ततः कुलञ्च सम्पूज्य पञ्चानां शुद्धिमाचरेत् ॥९॥

तदनन्तर पञ्चम तत्व का शोधन करके विशेष अर्घ्य की स्थापना करे । तत्पश्चात् देवी मानकर अपनी शक्ति की पूजा करके पंचतत्व शोधन करे ॥९॥

स्ववामे विन्दुषट्कोणं वृत्तञ्च चतुरस्त्रकम् ।
चतुर्द्वारञ्च संलिख्य सामान्यार्घ्योदकेन च ।
अभ्युक्षणं ततः स्थानं तत्र देवीं विचिन्तयेत् ॥१०॥

अपने बाई ओर विन्दु-षट्कोण-गोलाकारमण्डल तथा चतुष्कोण मण्डल तथा चतुर्द्वार बनाकर सामान्य अर्घ्य के जल से उसका अभ्युक्षण करते हुये उसे देवी स्थान मानकर उसमें देवी का चिन्तन करें ॥१०॥

नमः इति क्षालिताधारयन्त्रं संस्थाप्य पूजयेत् ।
वन्हेर्दशकलां तत्र पूजयेद्विधिपूर्वकम् ॥११॥

तत्पश्चात् नमः मन्त्र से आधार पात्र में क्षालन करते हुये उसमें मन्त्र अंकित करके उसे पूर्वोक्त (श्लोक १० में वर्णित) मण्डल में स्थापित करे और उस आधार यन्त्र में अग्नि की दशों कलाओं का विधिपूर्वक पूजन करे ॥११॥

(अग्नि की दश कलायें=पीता, श्वेता, अरुणा, कृष्णा, धूम्रा, तीव्रां, स्फुलिङ्गिनी, रुचिरा, ज्वालिनी, वन्ह्यासना)

आद्यष्टदेवाः सम्पूज्याः तथा धूम्रानार्चिका कला ।
पूर्वं त्रिपदिका मिष्ट्वा गन्धपुष्पेण पूजयेत् ॥१२॥

पहले ब्राह्मी प्रभृति अष्ट शक्ति एवं धूम्रार्चिका कला की पूजा करे। तदनन्तर त्रिपादिका का क्षालन करके गन्धपुष्पादि से उसका पूजन करे ॥१२॥

अष्टदिक्षु च सूर्यस्य पूजयेत् द्वादशीं कलाम् ।
ततश्च रक्तवस्त्रेण वेष्ठयेद्घटमुत्तमम् ॥१३॥

आठो दिशाओं में सूर्य की द्वादश कला (आदित्य, विभाकर, भास्कर, प्रभाकर, सहस्त्रांशु, त्रिलोचन, हरिदश्व, विभावसु, दिनकृत, द्वादशातमक, त्रयीमूर्त्ति तथा सूर्य) का पूजन करे। तत्पश्चात् रक्तवस्त्र के द्वारा एक उत्तम घट को लपेटे ॥१३॥

घटं सम्पूरयेद्देवि हेतुना मूलमुच्चरन् ।
ॐ अमृतादिक सोमस्य कलास्तत्रैव पूजयेत् ॥१४॥

हे देवी ! मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुये उस घट को कारण द्वारा (मद्य द्वारा) परिपूर्ण करे और उसमें चन्द्र की अमृतादिक कला का पूजन करे ॥१४॥

(चन्द्र की अमृतादिक कलायें=अमृता, तुष्टि, सम्पूर्णमण्डला, छाया, शशिनी, अङ्गिरा, अँशुमालिनी, मरीचि, सौम्या, ऋद्धि, घृति, प्राप्ति, रति, सुमनसा, यशा, पूषा)

तत्रापि पञ्चमुद्राभिः प्रणम्य तु कुलेश्वरि ।
नितम्बसवशाकारैर्नमो करतलद्वयम् ।
ह्रीं नमः इति नमस्कुर्यात् चतुरस्त्रा तु सा स्मृता ॥१५॥

हे कुलेश्वरी ! वहाँ पंचमुद्रा द्वारा प्रणाम करे। जैसे कमर को बिना झुकाये दोनो हाथों को जोड़कर "ह्रीं नमः" मन्त्र से नमस्कार करे। ऐसे झुके कि कमर टेढ़ी न हो। यही है चतुरस्त्रा मुद्रा ॥१५॥

पुटाकारं करं बद्धा मुष्ठिवन्धञ्च भूतले ।
विधाय च नमस्कुर्यात् ह्रीं नमः संवृता स्मृताः ॥१६॥

दोनों हाथों की मुट्ठी बन्द करके उन्हें परस्परतः संयुक्त करके भूमि पर स्थित करे और 'ह्रीं नमः' का उच्चारण करके नमस्कार की मुद्रा में झुके। इसे संवृता मुद्रा कहा गया है ॥१६॥

कृत्वा पुटाञ्जलिं भूमौ क्लीं नमः प्रणमेत् प्रिये ।
कथिता संपुटा मुद्रा श्रृणु देवि पुटाञ्जलिम् ॥१७॥

हे प्रिये ! दोनों हथेलियों को अंजलिबद्ध मुद्रा में जमीन पर रक्खें और 'क्लीं नमः' का उच्चारण करके प्रणाम करे। यही सम्पुटा मुद्रा है ॥१७॥

वृद्धाकनिष्टयोर्मूले निक्षिप्य च पुटाञ्जलिम् ।
कृत्वा च हुं नमो भूमौ प्रणमेत् सा पुटाञ्जलिः ॥१८॥

हे देवी ! अब पुटाञ्जलि का श्रवण करो। दोनों कनिष्ठा उंगलियों के मूल में दोनों अंगूठों को लगाकर दोनों हथेलियों को पृथ्वी पर रखकर 'हुं नमः मन्त्रोच्चारण के साथ प्रणाम करना ही पुटाञ्जलि मुद्रा है ॥१८॥

स: नमो योनि मुद्रायाः पञ्च मुद्राः प्रकीर्त्तिताः ।
ततः कुम्भसमीपे तु चन्दनेन च संलिखेत् ।
त्रिकोणवृत्तभूबिम्बं तत्र सर्वपथिकाय च ॥१९॥
पूजयित्वा बलि तत्र निधाय परमेश्वरि ।
माया त्रिसर्वपथिकाभ्यो नमः प्रिये ॥२०॥
बलिमुत्सृज्य देवेशि तत्वमुद्राक्रमेण च ।
वामहस्तेन तत्वस्य मुद्रां बद्धा महेश्वरि ॥२१॥
त्रि परिभ्राम्य मूलेन द्रव्योपरि कुलेश्वरि ।
देवतापश्चिमे भागे स्थापयेत्तत् कुलेश्वरि ॥२२॥
एवं सुधूपितं कृत्वा पञ्चीकरणाचरेत् ।
द्रव्यं दर्भैश्चास्त्रमन्त्रैः सन्ताड्य परमेश्वरि ॥२३॥
हमिति वामहस्तेन मुष्टि कृत्वा कुलेश्वरि ।
अधोमुख्या च तर्जन्या वेष्ठयेत्रिः कुलेश्वरि ॥२४॥

'स: नम:' कहकर योनिमुद्रा द्वारा प्रणाम करे। यह योनाख्य मुद्रा कही गई है। इस प्रकार पंचमुद्राओं का वर्णन किया गया। तदनन्तर उक्त रक्तवस्त्र से आवेष्ठित कारणवारि से भरे घट के पास रक्तचन्दन द्वारा त्रिकोण, गोलाकृति एवं चतुष्कोण बनाकर उसमें सर्वपथिक देवता की पूजा में 'ॐ ह्रीं सर्वंपथिक देवताभ्यो नम:' बलि का तत्वमुद्रा द्वारा अर्पण करे। तदनन्तर बायें हाथ की उंगलियों को तत्वमुद्रा में बन्द करके उस बायें हाथ से बलिग्रहण करके मूलमन्त्र द्वारा उस त्रिद्रव्य को घट में रक्खे गये कारणजल के उपर तीन बार घुमा कर उसे देवता के पश्चिम ओर स्थापित करे। हे देवेशी ! हे महेश्वरी ! हे कुलेश्वरी ! हे परमेश्वरी ! अब उस बलिद्रव्य को सुगन्धित धूप दिखलाकर उक्त कारणवारि को भी सुधूपित करके उसका पंचीकरण करे। हे कुलेश्वरी ! 'फट्' मन्त्र का उच्चारण करते हुये कुश के द्वारा उसको झाड़े। तदनन्तर 'हं' मन्त्र द्वारा (बलिद्रव्य को बायीं मुट्ठी में बन्द करके उस) बाये हाथ की तर्जनी बाहर करके अधोमुख करे और तर्जनी को द्रव्य के उपर तीन बार घुमाये। उस समय 'हं' मन्त्र का उच्चारण करता रहे ॥१९-२४॥

मूलेन वीक्षणं देवि अस्त्रेणाभ्युक्षणञ्चरेत् ।
त्रिसुगन्धञ्च मूलेन गृह्णीयात् परमेश्वरि ।
पञ्चीकरणमित्युक्तं क्रमशो विद्धि पार्वति ॥२५॥

मूलमन्त्र के द्वारा द्रव्य के उपर दृष्टिपात करे, 'फट्' मन्त्र द्वारा अभ्युक्षण करे। मूलमन्त्र पढ़ते हुये द्रव्य को सुगन्धित करे। हे परमेश्वरी ! हे पार्वती ! संताडन, वेष्ठन, वीक्षण, अभ्युक्षण एवं सुगन्धीकरण को ही पंचीकरण कहा गया है ॥२५॥

त्रिकोणं तत्र संलिख्य तन्मध्ये च हे सौः प्रिये ।
हे सौः हे सौः नमोऽन्तेन त्रिश्च तत्रं प्रपूजयेत् ॥२६॥
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य वरुणं तदनन्तरम् ।
वामदेवो ततो ङेऽन्तं वौषट् मन्त्रेण पूजयेत् ॥२७॥
सम्पूज्य वामदेवञ्च पशुपतिं ततो यजेत् ।
प्रणवं कूर्चबीजञ्च ङेऽन्तं पशुपति ततः ।
कूर्च युग्ममन्त्रबीजमन्त्रेण पशुपतिं यजेत् ॥२८॥
मायाबीजं समुच्चार्य कालीबीजं ततः परम् ।
ततः परमपदं देवि स्वामिनि च ततः परम् ।
परा कोषगता देवि शून्यवाहिनी ततः परम् ।
चन्द्रसूर्याग्निभक्षिणी पश्चात् पात्रञ्च तदनन्तरम् ।
विश्वयुग्मं वन्हिजाया दशधा सेजपेत् प्रिये ॥२९॥

हे कुलेश्वरी ! हे प्रिये ! तदनन्तर ॐ मन्त्र द्वारा घट पर पुष्प डाले। उस घट में स्थित कारण जल में त्रिकोण और मध्य में 'हसौः' लिखकर 'हसौ: नम:' मन्त्र से उस त्रिकोण मण्डल का पूजन करें। 'ॐ वं वामदेवाय वौषट्' मन्त्र से पूजन करे। यह पूजन वामदेव का होगा। वामदेव की पूजा करके पशुपति की पूजा करें। 'ॐ हुं पशुपतये हुं हुं हौं नम: मन्त्र पशुपति की पूजा में प्रयुक्त होगा। हे देवी ! हे प्रिये ! तत्पश्चात् 'ह्रीं क्रीं परमस्वामिनी पराकोषशून्यवाहिनी चन्द्रसूर्याग्निभक्षिणी पात्रं विश विश स्वाहा' मन्त्र का १० बार जप करें ॥२६-२९॥

वाग्भवं भुवना लक्ष्मीः आनन्देश्वरङेन्तकम् ।
विद्महे च ततो देवि धीमहीति तदनन्तरम् ।
इति गायत्रीं त्रिर्जप्त्वा ऋक्त्रयं च जपेदिति ॥३०॥

'ऐं ह्रीं श्रीं आनन्देश्वराय विद्महे देवि धीमहि तन्नो देवः प्रचोदयात्' इस गायत्री मन्त्र का जप तीन बार करके तीन मन्त्र का जप करे जो कि नीचे अगले श्लोकों में अंकित है ॥३०॥ (श्लोक ३२, ३३, ३४ में अंकित है ।)

ॐ रां रीं रुं समुद्धृत्य रैं रौं क्रौं क्रौं क्रन्ततः परम् ।
ततः स्वधा कृष्णशापं मोचयद्वय ततः परम् ।
अमृतं स्त्रावयद्वन्द्वं वन्हिजाया कुलेश्वरि ।
इति द्वादशधा जप्त्वा मन्त्राण्येतानि त्रिर्जपेत् ॥३१॥

हे कुलेश्वरी ! तीनो मन्त्रों को जपने के बाद (जो श्लोक ३२-३३-३४ में अंकित हैं) "ॐ रां रीं रुं रैं रौं क्रौं क्रौं क्रः स्वधा कृष्णशापं मोचय मोचय अमृतं स्त्रावय स्त्रावय स्वाहा" मन्त्र का १२ बार जप करे और पुनः श्लोक ३२-३३-३४ में अंकित मन्त्र पढ़े ॥३१॥ वे मन्त्र इस प्रकार हैं—

ॐ एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् ।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम् ॥३२॥
ॐ सूर्यमण्डलसम्भूते वरुणालय सम्भवे ।
अमाबीजमये देवि शुक्रशापाद् विमुच्यते ॥३३॥
ॐ वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि ।
तेन सत्येन में देवि ब्रह्महत्यां व्यपोहतु ॥३४॥

परब्रह्म एक हैं जो स्थूल सूक्ष्म जगतमय हैं । वे सत्य हैं । इस परब्रह्म ज्ञान द्वारा मैं कच की हत्याजनित आपकी ब्रह्महत्या का नाश करता हूँ ।

हे सूर्यमण्डल से उत्पन्न, समुद्र से उत्पन्न अमा नामक नित्य कलारूप बीज रूपिणी देवी ! आप शुक्र शाप से मुक्त हो जायें ।

हे देवी ! 'ॐ' ही समस्त वेदों का बीज है । वह ब्रह्मानन्दमय है । उस सत्यरूप प्रणव द्वारा ब्रह्महत्या को विदूरित करो ॥३२-३४॥

इतिमन्त्रत्रयेणैव त्रिधा समभिमन्त्र्य च ।
ह्रीं श्रीं श्रां श्रीं करोति शोभिनी च ततः परम् ।
ततो विकारमस्येति हर हर वन्हिवल्लभा ।
इति त्रयं जप्त्वा द्रीं श्री ऐं च ततः परम् ।
इति प्रकाशिनीं त्रिश्च जप्त्वा तिरस्करणीं जपेत् ॥३५॥
ह्रीं क्लीं ऐं श्रीं समुद्धृत्य तिरस्करणी ततः परम् ।
सकलजनवाग्वादिनी ततः सकलपशुव्रते ।

जनमनश्चक्षुस्ततो देवि श्रोत्रजिह्वा ततः परम् ।
प्राणोक्ति तिरस्करणं कुरुयुग्मं ततः परम् ॥३६॥

लीनं हयं समधिरुह्य पुरः प्रयान्ति,
लीलांशुकाभरणमाल्यविलेपनाढ्या ।
निद्रापटेन भुवनानि तिरोदधाना,
खड्गं भुजैर्भगवति परिपातु भक्तान् ॥३७॥
इति ध्यात्वा कुलेशानि इमं मन्त्रं त्रिधा जपेत् ।
ठः ठः वन्हिवधुर्देवि द्रव्योपरि त्रिधा जपेत् ॥३८॥

उपरोक्त तीनो मन्त्र द्वारा कारण द्रव्य को तीन बार अभिमंत्रित करके 'ह्रीं श्रीं श्रां श्रीं करोति शोभिनि विकारमस्य हर हर स्वाहा' इस मन्त्र का ३ बार जप करके—तब 'द्रां श्रीं ऐं' मन्त्र का ३ बार जप करे । तदनन्तर तिरस्करणी मन्त्र का जप करे जो अंकित किया जा रहा है ।

हे देवी ! हे कुलेश्वरी अब प्रथमतः ध्यान करे—

"लीन अश्व पर आरूढ़ लीन वस्त्र एवं आभरण, माला विलेपन युक्ता देवी सम्मुख जाने वाली हैं । वे निद्रारूप वस्त्र द्वारा समस्त भुवन को तिरोहित करके खड्गयुक्त बाहुद्वारा भक्तजन की रक्षा करें ।" यह है तिरस्करणी देवी का ध्यान ।

तदनन्तर "ह्रीं क्लीं ऐं तिरस्करणि सकलजन वाग्वादिनि सकलपशुव्रते जनमनश्चक्षुःस्त्रोत्रलिङ्ग घ्राणोक्ति तिरस्करणं कुरु कुरु ठः ठः स्वाहा" ३ बार उक्त घट को लक्ष्य बना कर पढ़े ॥३४-३८॥

"पावमानः परानन्दः पावमानः परोरसः ।
पावमानं परंज्ञानं तेन त्वां पावयाम्यहम् ।
पावमानं परं ज्ञानं तेन त्वां पावयाम्यहम् ।"

इस श्लोक को पावमान मन्त्र कहते हैं । उसे तीन बार जपे ॥३९॥

पावमानञ्च त्रिर्जप्त्वा वायुबीजेन शोषयेत् ॥३९॥

इसे तीन बार जप करके वायुबीज 'यं' द्वारा संशोषण करना चाहिये ॥३९॥ (घटस्थित कारण का मानसिक संशोषण)

रमिति वन्हिबीजेन संदह्य प्रणमेदिति ॥४०॥

'रं' रूपी अग्निबीज से उस द्रव्य को संदग्ध करके प्रणाम करे ॥४०॥ (घटस्थित द्रव्य को ध्यान द्वारा संदग्ध करे) ।

काली तारा महाविद्या षोडशीं भुवनेश्वरी ।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा ।
बगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका ।
एता दश महाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्त्तिताः ।।४१।।

काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, ब मातङ्गी, कमला को दशमहाविद्या सिद्धविद्या कहा गया है ।।४१।।

काली तारा तथा छिन्ना मातंगी भुवनेश्वरी ।
अन्नपूर्णा तथा नित्या दुर्गा महिषमर्दिनी ।
त्वरिता त्रिपुरा पूटा भैरवी बगला तथा ।
धूमावतो तथा ज्ञेया कमला च सरस्वती ।
जय दुर्गा तथा भद्रे तथा त्रिपुरसुन्दरी ।
अष्टादश महाविद्या तन्त्रादौ कथितः प्रिये ।।४२।।

हे प्रिये ! तन्त्रों में काली, तारा, छिन्नमस्ता, मातंगी, भुवनेश्वरी, अन्न पूर्णा, नित्या, दुर्गा, महिषमर्दिनी, त्वरिता, त्रिपुरा, भैरवी, बगला, धूमावत कमला, सरस्वती, जयदुर्गा, त्रिपुरसुन्दरी को १८ महाविद्या रूप से कहा ग है ।।४२।।

नात्र कालविशुद्धिः स्यात् समयासमयादिकम् ।
न वारतिथिनक्षत्रं न योगकरणस्तथा ।
सिद्धविद्या महाविद्या युगसेवा प्रकीर्त्तिता ।।४३।।

।। इति पञ्चदशः पटलः

इस सिद्धविद्या अथवा महाविद्या की आराधना-पूजा या मन्त्रादि जप किसी कालशुद्धि की आवश्यकता नहीं है । समय-असमय भी नहीं है । किस विशेष वार, तिथि, नक्षत्र, योग-करण आदि की अपेक्षा नहीं है । इस युग में यह आराधना किसी भी समय की जा सकती है ।

(पन्द्रहवाँ पटल समाप्त)

[समाप्त]

पुस्तकालय
ग्रंथ परिग्रह 11868

महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज प्रणीत अन्य ग्रन

१. महापथ ४०.०
२. गुरूदर्शन से सम्बोधि ४०.
३. आत्म निर्भर २५
४. अन्तर्यात्रा ४०
५. श्रीकृष्ण प्रसंग ४०
६. सिद्धभूमि ज्ञान गंज ४०.
७. साधुदर्शन तथा सत्प्रसंग भाग-१ २५.
८. शांभवी तंत्र ६०.०
९. विजिज्ञासा ६०.
(प्रेस

भागर्व शिव राम किंकर योगत्रयानन्द जी (कविराज
जी के शिक्षागुरू) प्रणीत ग्रंथ मूल बंगला से अनूदि

१. आर्यशास्त्र प्रदीप १-४ भाग में मूल्य १६०.०० रू.
अनुवादक एस.एन. खण्डेलवाल

श्री स्वामी प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती प्रणीत ग्रंथ
मूल बंगला से अनुदित

१. जपसूत्रम १-६ भाग सम्पूर्ण प्रत्येक भाग का मूल्य अजिल्द १००.०
सजिल्द १५०.०

प्रकाशक

भारतीय विद्या प्रकाशन

पोस्ट बॉक्स नं. ११०८
कचौडी गली वाराणसी
(उ.प्र.) २२१००१

१. यू.बी. जवाहर नगर
बँग्लो रोड, दिल्ली ११०००७